कल्याण

वर्ष २९] * * * [अङ्क ६

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,४५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०२२, जून १९६५

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गोपियोंका विरह-विहार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
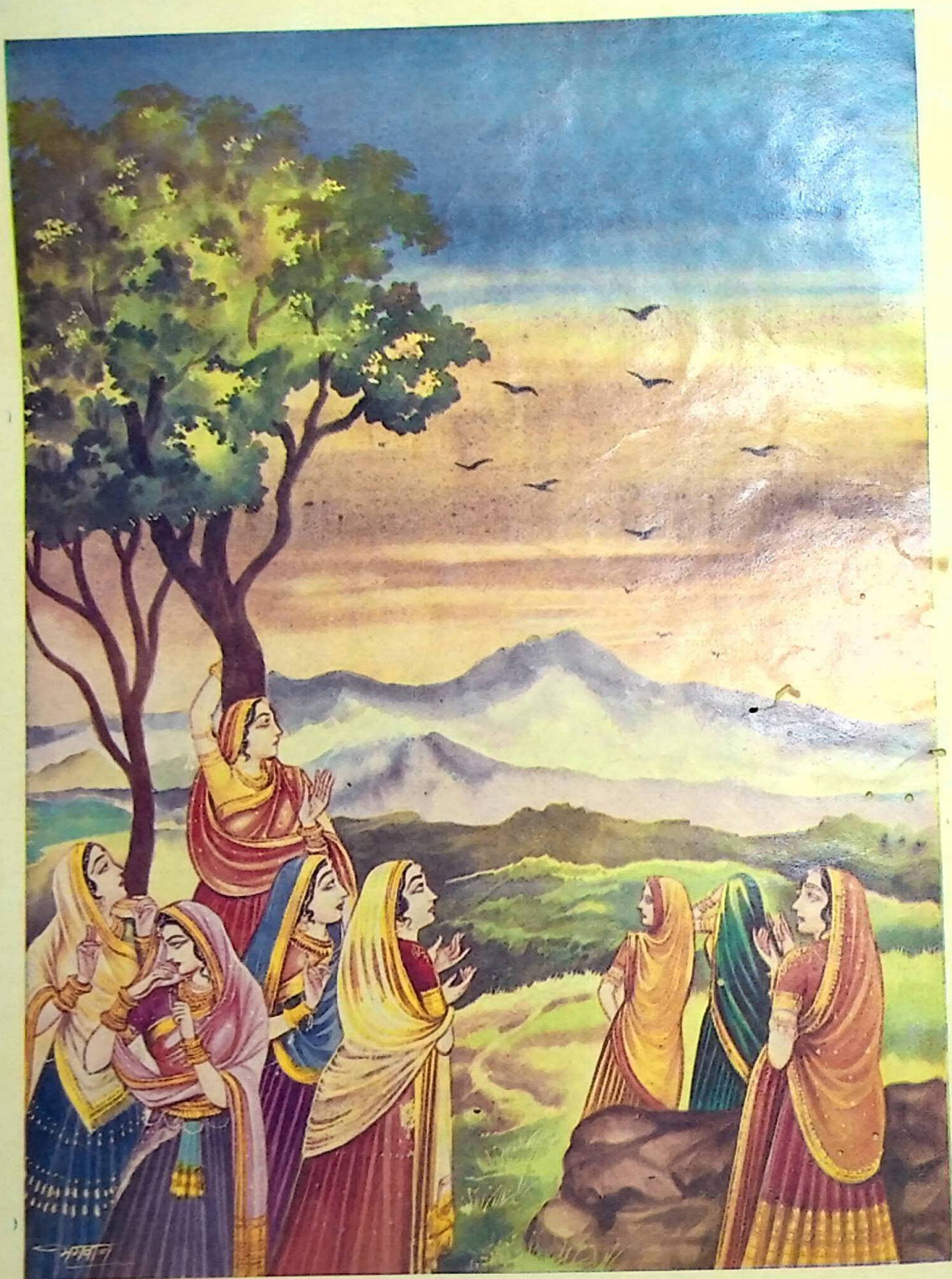
सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत् ।
क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः ॥

वर्ष ३९ | गोरखपुर, सौर आषाढ २०२२, जून १९६५ | संख्या ६ पूर्ण संख्या ४६२

गोपियोंका विरह-विहार

गये श्यामसुंदर जब मथुरा, छोड़ पवित्र प्रेम-रस-धाम ।
विरहातुरा गोप-रमणी सब पागल-सी हो गयीं तमाम ॥
एक देखती, कहीं प्रगट हो दर्शन दे दें, नभकी ओर ।
एक निराश हुई अति आकुल भई पूर्व-स्मृति मग्न-विभोर ॥
एक देख कुछ आशा-अंकुर भरती अति मनमें अनुराग ।
एक चकित-सी सोच रही, क्यों किया हमारा प्रियने त्याग ॥
सभी खिन्न, विच्छिन्न हृदय सब, भिन्न-भिन्न कर रहीं विचार ।
आठों पहर गोपियाँ करतीं श्याम-संग यों विरह-विहार ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

याद रक्खो—भगवान् एक हैं । उन्हींमें सारी सृष्टि है । प्रत्येक प्राणीके वे सुहृद् हैं । वे चाहते हैं कि हम उनसे मिलें, उनकी प्रीति प्राप्त करें, पर हम ऐसे अभागे हैं कि हम उनके चाहनेपर भी उनसे मिलना नहीं चाहते ।

याद रक्खो—हमारे न चाहनेपर भी वे हमसे मिलना चाहते हैं और मिलना चाहते हैं एकान्तमें । वे कभी अपमानके रूपमें आते हैं, जिससे सम्मानकी सारी भीड़ हट जाती है । वे कभी निन्दाके रूपमें आते हैं, जिससे प्रशंसाका सारा कोलाहल शान्त हो जाता है । वे कभी दारिद्र्यके रूपमें आते हैं, जिससे आस-पास घेरा डाले रहनेवाले स्वार्थियोंके दल हट जाते हैं । वे कभी असफलताके रूपमें आते हैं, जिससे सफलताकी पूजा करनेवालोंका सारा समूह तितर-बितर हो जाता है और वे कभी भयानक पीड़ाके रूपमें आते हैं, जिससे उस पीड़ाके अतिरिक्त और कुछ भान ही नहीं रहता । इस प्रकार वे विभिन्न प्रतिकूल रूपोंमें आकर तुम्हें अकेला कर देते हैं और फिर अकेलेमें तुमसे मिलते हैं ।

याद रक्खो—वे किसी भी रूपमें आवें, जब दूसरेकी सत्ता नहीं रहने देते, तब उनसे स्वाभाविक ही एकान्त-मिलन होता है । उस एकान्त-मिलनमें यदि तुम उनको पहचान लेते हो तो तुम कृतकृत्य हो जाते हो । फिर तुम्हारे लिये कुछ भी करना-पाना शेष नहीं रह जाता । पर जबतक तुम उन्हें नहीं पहचान लेते, तबतक तुम्हारा भटकना और जलना नहीं मिट सकता ।

याद रक्खो—अनुकूलताकी भीड़में उन्हें पहचानना बड़ा कठिन होता है । उस समय चारों ओर ऐसा कोलाहल मचा रहता है कि तुम उसीमें अपनेको खो देते हो । वे परम सुहृद् भगवान् तुम्हें इस कोलाहलसे मुक्त करके अपने स्वरूपका पहचान करानेके निमित्त विभिन्न प्रतिकूलताओंके रूपमें आते हैं । प्रतिकूलतामें भीड़ तथा कोलाहल नहीं रहता । पहचान जल्दी होती है । ये सभी प्रतिकूलताएँ वस्तुतः उनके परम सौहार्दका ही परिचय है ।

याद रक्खो—जब पेटमें या सिरमें भयानक पीड़ा होती है तो उस समय उस पीड़ाके अतिरिक्त कुछ भी भान नहीं रहता । उस पीड़ाके रूपमें वे एकमात्र अकेले रह जाते हैं और अकेलेमें तुम उन्हें पहचानकर एकान्तमें मिल सकते हो । वहाँ कोई बाधा देनेवाला नहीं रहता । इस प्रकार प्रत्येक भयानक प्रतिकूलतामें तुम उन्हें पहचानकर सहज ही एकान्त-मिलनका सुख लूट सकते हो । प्रतिकूलतामें वे ही आते हैं और आते हैं तुम्हें एकान्त-मिलनका सुख देनेके लिये ।

याद रक्खो—प्रियतम भगवान्‌को पहचानते ही प्रतिकूलताका सारा दुःख मिट जायगा और यह प्रत्यक्ष अनुभव होगा कि भगवान्‌ने अपनी अहैतुकी अनन्त कृपासे स्वयं प्रतिकूलताका रूप धारण किया है और इस प्रकार अपने एकान्त-मिलनका दिव्य अनुभव करा वे तुम्हें कृतकृत्य करनेको पधारे हैं । उनको पहचानो, स्वागत करो और उनसे मिलकर कृतार्थ हो जाओ ।

'शिव'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

गीतामूर्ति श्रीजयदयालजी

(लेखक—डा० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना)

विगत वैशाख कृष्ण २, १७ अप्रैल शनिवारको अपराह्णमें उत्तराखण्डमें अपने प्रिय धर्मक्षेत्र कर्मक्षेत्र ऋषिकेश स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें गीतामूर्ति श्रीमन्त सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने शरीर त्यागकर परम प्रयाण किया लगभग अस्सी वर्षका एक आदर्श कर्मयोगीका जीवन बिताकर । श्रीगोयन्दकाजीके निधनसे भारतीय संस्कृति और साधनाकी अखण्ड परम्पराका एक सुयोग्यतम लोकसंग्रही गृहस्थ संत चला गया, जिसके जीवनका एक-एक श्वास, शरीरका एक-एक रक्तकण भगवान् वासुदेवके गीतामृतसे सुवासित एवं आलोकित था । लोकमान्य तिलकके बाद गीताका इतना अनन्य निष्ठावान् भक्त शायद हुआ नहीं । गोयन्दकाजीका सम्पूर्ण जीवन गीताके प्रकाशसे प्रकाशित था, गीताके अमृतसे ओतप्रोत था । एक शब्दमें कहा जाय तो वे साक्षात् 'गीतामूर्ति' थे, गीताके सशरीर अवतार ही थे । गीतानुसारी जीवनका ऐसा उदाहरण भारतीय संस्कृति और साधनाके इतिहासमें विरल ही है ।

राजस्थानके बीकानेर राज्यके चूरू नगरमें सामान्य वैश्यकुलमें जन्म, बंगालके बाँकुड़ामें व्यापारक्षेत्र, परंतु गोरखपुरका गीताप्रेस, कलकत्तेका गोविन्दभवन, चूरूका ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, ऋषिकेश स्वर्गाश्रमका गीताभवन, वृन्दावन, नवद्वीप और चित्रकूटके भजनाश्रम जिसका कर्मक्षेत्र-धर्मक्षेत्र अखण्ड गङ्गाके प्रवाहकी तरह, सूर्यनारायणकी तरह जिसका कर्मयोगी जीवन, लोकसेवामें, लोक-कल्याणमें जीवनका एक-एक क्षण—ऐसे थे श्रीमन्त सेठ श्रीजयदयालजी—

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।

बहुत बचपनमें ही गीता हाथ लगी, एक सूत्र मिल गया जिसके सहारे सारे शास्त्र-पुराणोंको अधिगत कर लिया । भारतीय संस्कृति और साधनाके व्यापक क्षेत्रमें जो कुछ भी, जितना कुछ भी सत्यं शिवं सुन्दरं है, उसे आत्मसात्कर जीवनमें चरितार्थ कर लिया । शास्त्र-चिन्तन चिन्तनमात्र ही नहीं रह गया, वह जीवनका अविभेद्य अङ्ग बन गया । गीता केवल कण्ठस्थ नहीं हृदयस्थ, जीवनस्थ । साँस-साँसमें वे गीता ही जिये, गीतामें ही जिये, गीताके लिये ही जिये । गीताका इतना महान् अनन्य अनुरागी अब कहाँ मिलेगा ?

और आश्चर्य होता है उनकी दैनिक चर्याको देखकर । प्रातःकाल ४ बजेसे रातके ११-१२ बजेतक अखण्ड भावसे कर्मरत । कहीं प्रमाद नहीं, आलस्य नहीं, तन्द्रा नहीं, विश्राम नहीं, आराम नहीं, शिथिलता नहीं, उदासीनता नहीं । ऐसा लगता यह व्यक्ति चिर जागरूक है, सतत सावधान है । जबसे होश सँभाला और यज्ञोपवीत संस्कारसे सम्पन्न हुए, नियमपूर्वक दोनों कालकी संध्योपासना ठीक समयसे—प्रातःकालकी सूर्यनारायणके उदयके पूर्व, संध्याकालकी सूर्यास्तके पूर्व । यात्राओंमें हों, सभाओंमें हों, विचार-विमर्शमें हों, बीमार हों, चाहे जहाँ भी हों, जैसे भी हों संध्योपासनाके समय वे सब कुछ छोड़कर एकदम सहसा संध्यामें लग जाते और क्या मजाल कि उनकी एक भी संध्या नागा हुई हो । गीताके समान ही संध्योपासनमें उनकी अनन्य निष्ठा थी । प्रातःकालीन संध्याके पश्चात् वे नियमपूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते और योगासन करते । गीता और सहस्रनाम उन्हें खूब अच्छी तरह कण्ठस्थ थे; परंतु पाठकी विधि ही है कि ग्रन्थ देखकर पाठ किया जाय और वे विधिके बहुत अनुशासनको कड़ाईके साथ पालन करनेवाले थे । आँखोंसे कम दीखने लगा था तो विधिवत् गीता और सहस्रनाम वे सुनते, नियमपूर्वक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सुनते। गायत्री और हरिनामके प्रति भी उनकी वैसी ही अनन्य निष्ठा थी।

कई बातोंमें उन्होंने अपने लिये नियमोंका कवच बना लिया था—भोजनके सम्बन्धमें, वस्त्रके सम्बन्धमें। भोजनमें वे कुल तीन चीजें लेते थे। हल्का सात्त्विक भोजन। गोदुग्धपर उनका विशेष आग्रह था। वस्त्र भी शरीरपर बस एक धोती, एक चौबन्दी, एक चादर। कहीं जाना-आना होता तो सिरपर शर्बती रंगकी पगड़ी और पैरोंमें फलाहारी जूते। जबसे होश सँभाला चमड़ेके जूतोंका व्यवहार नहीं किया, विदेशी वस्त्र छुए नहीं, अंग्रेजी दवाइयाँ लीं नहीं। अंग्रेजी दवामात्रसे उन्हें घृणा-सी थी। गोली, सूई, मिक्स्चर किसी रूपमें भी वे ग्रहणको तैयार नहीं होते। यहाँतक कि कई अवसरोंपर प्राण जानेका खतरा उठा लिया; परंतु अंग्रेजी दवा लेनेसे साफ-साफ इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, स्वजनोंको भी अंग्रेजी दवाके विषसे सर्वथा मुक्त रक्खा। कितना विलक्षण था उनका सर्वतोमुखी आत्मसंयमका भाव—ऐसी तपश्चर्या जो सहज ही उनके जीवनका अङ्ग बन गयी थी।

श्रीमन्त गोयन्दकाजी एक विशिष्ट मिशन लेकर आये थे और आपने अपना सम्पूर्ण जीवन, जीवनकी एक-एक साँसको उस मिशनकी पूर्तिमें होम कर दिया। गीता उनकी समस्त प्रवृत्तियोंके केन्द्रमें थी और स्वयं गीतानुसारी जीवन बिताया, हजारों व्यक्तियोंको उसी पावन पथपर प्रवृत्त किया, प्रवृत्त कराया। उनके जीवनका कम्पास सदा गीतोन्मुखी रहा। गीता उनके लिये भगवान्‌की केवल वाणी ही नहीं थी, भगवान्‌का दिव्य मङ्गलमय विग्रह थी, भगवान्‌का हृदय थी। भगवान्‌ने अपना गीतारूपी हृदय गोयन्दकाजीके हृदयमें डाल दिया था और गोयन्दकाजीने उस अमृतप्रसादको पिछले साठ-पैंसठ वर्षोंतक दोनों हाथ लुटाया; साहित्य प्रकाशित कर लुटाया, प्रवचनोंद्वारा लुटाया, प्रोत्साहनों-द्वारा लुटाया। स्वयं अपना वैसा ही जीवन बनाकर लुटाया। गङ्गाके अजस्र प्रवाहकी तरह उनके गीता-प्रवचनोंका अजस्र प्रवाह चलता रहा। लगता था यह व्यक्ति केवल गीताके लिये ही इस पृथ्वीपर आया है।

इस महदनुष्ठानमें उन्हें कई साथी मिले; परंतु तीन ऐसे मिले जो सर्वथा इस अनुष्ठानके अनुरूप ही थे। सबसे विरल साथी, सखा, मित्र, सचिव थे घनश्यामदासजी। आत्मसमर्पणकी प्रतिमूर्ति, **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'**का जीवन्त उदाहरण। समर्पणकी जो सुषमा घनश्यामजीमें देखनेको मिली, वह आजके हिसाबी-किताबी दुनियामें कहाँ मिलती है? वे अपना जवाब आप ही थे—एक, अद्वितीय, अनन्य। गोयन्दकाजीमें उन्होंने अपना **'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्'** सब कुछ, सब कुछ पा लिया। सोते-जागते **'पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाः।'** सेठजीने उन्हें 'अपना'- लिया। गोयन्दकाजीकी सारी कर्मशक्ति घनश्यामजीमें स्वतः स्फुर्त हुई अपनी पूरी सजगता और तेजस्विताके साथ। यहाँतक कि अखिल भारतीय तीर्थयात्रामें १०४-१०५ डिग्री ज्वर और खाँसी आदिके होते हुए, शरीर सर्वथा अस्वस्थ जीर्ण-शीर्ण होते हुए भी घनश्यामजीने सेठजीके अनुष्ठानको सविधि सम्पन्न किया ही। उन्होंने अपने तन-मन-धन-को कभी भी अपना नहीं माना, सब कुछ **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'**। समर्पणकी मनोहारी मूर्ति। गीताप्रेसके इतिहासमें ही क्यों, श्रीगोयन्दकाजी-की समस्त प्रवृत्तियों एवं अनुष्ठानों तथा संकल्पोंको रूपायित करनेमें श्रीघनश्यामदासजीका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा मिलेगा, अमृताक्षरोंमें। आत्मनिवेदनका सौन्दर्य एवं आनन्द क्या है, कैसा होता है कोई घनश्यामजीसे जाने। और क्या आश्चर्य कि कुछ साल पहले यहीं,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इसी ऋषिकेश स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें घनश्यामजीने गङ्गातटपर गोयन्दकाजीकी गोदमें अपना शरीर छोड़ा। ऐ मरण! तेरा कितना अनुपम पावन शृंगार उस दिन हुआ था। जिस मृत्युपर मानवकी कौन कहे देवता भी तरसते होंगे, ईर्ष्या करते होंगे।

यह निःसंकोच स्वीकार करना चाहिये कि घनश्यामजीके बाद गीताप्रेस शनैः-शनैः श्रीहीन होने लगा। घनश्यामजी प्रेसके कर्मचारियोंके सच्चे शुभचिन्तक थे। उनके अभावमें वे अपनेको अनाथ मानने लगे। गोयन्दकाजी अनायास किसीको खोजना या पुकारना होता तो 'घणसाम'को पुकार बैठते। बादमें होश आता कि उनका घनश्याम तो 'घनश्याम'में सदाके लिये जा मिला है। घनश्यामजीके जानेके बाद सेठजीका जैसे परम अन्तरङ्ग अनन्य सखा-सचिव-सेवक चला गया। उस अभावकी पूर्ति कोई न कर सका, वह बना रहा, सालता रहा।

हाँ, सेठजीकी कर्मशक्तिकी धारा घनश्यामजीमें जैसे उतरी थी, वैसे ही उनकी भावशक्तिकी धारा श्रीपोद्दारजी (पूज्य श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) में उतरी। उनसे भक्तिकी एक मधुर प्रखर धारा बह निकली। श्रीभाईजीने हरिनामका रस, लीलाका रस बरसाना शुरू किया और हजारों नहीं, लाखों-लाखों व्यक्तियोंको प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूपमें इस भावराज्यमें प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता है कि श्रीभाईजीके कारण ही गीताप्रेसके साहित्यका इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रोंमें श्रद्धा और सम्मान पा सका, उसका इतना व्यापक प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव हो सका।

आरम्भमें कहते हैं, श्रीपोद्दारजीने श्रीगोयन्दकाजीको ही सम्बोधित कर—

'जय दयाल जय दयाल, जय दयाल देवा'

—कविता लिखी थी। भगवान् महाविष्णुकी पूजा-अर्चाका संस्कार भी सम्भवतः श्रीमन्त सेठजीसे ही प्राप्त हुआ होगा; परंतु बादमें धीरे-धीरे श्रीपोद्दारजी श्रीराधा-कृष्णके लीलारसमें उतरते गये, उतरते-उतरते उसीमें प्रायः खो गये—'कल्याण'में 'मधुर' एवं राधाष्टमी-उत्सव-समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

—स्वामी श्रीरामसुखदासजीको श्रीमन्त सेठजीका वैराग्य-तत्त्व मिला। कई बातोंमें, विचारमें, आचारमें, प्रचारमें, उच्चारमें, प्रवचनमें। स्वामी रामसुखदासजी सेठजीकी 'कार्बन कापी' या 'प्रतिच्छवि' प्रतीत होते हैं—वैसे ही बैठना, वैसे ही 'नारायण, नारायण, नारायण'की नामधुन, गीताकी गहराईमें उतरनेकी वही दक्षता, उसकी बारीकियोंका वैसा ही सूक्ष्म विश्लेषण एवं उद्घाटन—लगता है सेठजीने अपना सारा ज्ञान घोलकर स्वामीजीको पिला दिया है, परंतु फिर भी सेठजी सेठजी थे, स्वामीजी स्वामीजी हैं।

यों सेठजीको सारी गीता याद थी और उसके एक-एक श्लोक प्रिय थे; परंतु फिर भी कुछ श्लोक विशेष प्रिय प्रतीत होते थे—जिनमेंसे स्वयं श्रीमन्त सेठजीका अन्तर्जीवन झाँकता था—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

× × ×

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

× × ×

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

× × ×

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

× × ×

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

× × ×

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

× × ×

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

श्रीमन्त सेठजीके लिखे अनेक ग्रन्थ हैं—तत्त्व-चिन्तामणि सात भाग, परमार्थ-पत्रावली, आत्मोद्धारके साधन, ज्ञानयोगका तत्त्व, प्रेमयोगका तत्त्व, भक्तियोगका तत्त्व, कर्मयोगका तत्त्व, महत्त्वपूर्ण शिक्षा, परमसाधन आदि-आदि। परंतु उनकी सबसे प्रिय कृति है 'गीतातत्त्व-विवेचनी'। एक बार ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरूमें सेठजीने स्वयं भाषणमें स्वीकार किया था कि संस्कृतका पठन-पाठन तथा आयुर्वेद उन्हें विशेष प्रिय है। एक बार ऋषिकेशके सत्सङ्गमें पूछनेपर बताया कि व्यर्थके नौ-छःमें क्यों पड़ते हो—गङ्गा-स्नान करो, संध्या-गायत्री करो, गीताका स्वाध्याय करो और हरिनामका आश्रय लो। श्रीमन्त सेठजी हम सभीके अभिभावक थे। गार्जियन थे। एक बार ऋषिकेश जाते समय उनसे पटना स्टेशनपर मैं मिला। श्वास-कष्टका उभार था। उसे कुछ दबाये रखनेके लिये मुँहमें पान लिये हुए था। सेठजीने देखा और पूछ ही तो दिया—'क्यों, पान खानेकी आदत कबसे पड़ गयी?' उनके प्रति हमलोगोंका 'सम्भ्रम'का श्रद्धा-आदरका भाव था। उनके सत्संगमें समाधिका आनन्द मिलता था। उनके अट्टहाससे ऋषिकेशका समस्त वातावरण गूँजता था। बड़ा ही मुक्त अट्टहास था उनका। गङ्गाके तटपर हिमालयकी गोदमें इस ऋषिकल्प गृहस्थ संतने सत्सङ्गका सदाव्रत चलाया—पिछले पचास वर्षोंसे प्रतिवर्ष नियमित रूपसे। गतवर्ष अतिशय अस्वस्थताके कारण नहीं जा पाये और इस वर्ष मात्र शरीर-त्यागके लिये ही इस उत्तराखण्डकी पावन भूमिमें गङ्गाके तटपर हिमालयकी गोदमें—अपने प्रिय गीता-भवनमें—सहस्र-सहस्र सत्सङ्गी भाइयोंसे घिरे हुए—पास ही श्रीभाईजी, श्रीस्वामीजी रामसुखदासजी, स्वामीजी श्रीचक्रधरजी, स्वामी भजनानन्दजी श्रीमोहनलालजी, ! गीताका ध्यान करते हुए, गीतागायकका ध्यान करते हुए, हरिनामकी अमृत-वर्षामें भगवान्‌का प्रिय भक्त भगवान्‌की गोदमें सदाके लिये सो गया............!!!

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़िके मैली कीन्ह चदरिया।
दास कबीर जतनसे ओढ़े ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया॥

सचमुच श्रीजयदयालजीकी चादरपर कोई दाग नहीं पड़ा, उन्होंने साईंसे उसे जैसी पायी वैसी ही—ज्यों-की-त्यों—बेदाग, साईंके चरणोंमें धर दिया। सच्चा 'श्रीकृष्णार्पण'का जीवन, श्रीकृष्णार्पणकी प्रयोगशाला, कोटि-कोटि हृदयोंकी श्रद्धाञ्जलि उन पावन चरणोंमें—श्रद्धापूर्वक, भक्तिपूर्वक, प्रीतिपूर्वक।

जयदयालजी नहीं हैं; परंतु जयदयालजी चिर अमर हैं—जबतक ऋषिकेशकी गङ्गा इस देशको पावन करती रहेगी, जबतक गीताप्रेसका साहित्य इस देशको ज्ञानालोकित करता रहेगा, जबतक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम एवं भजनाश्रमोंकी वेदध्वनि एवं हरिनामका उद्घोष गूँजता रहेगा—जबतक इस देशमें एक भी आस्तिक पुरुष बच रहेगा, जबतक राम और कृष्णका नाम इस देशमें रहेगा तबतक भक्तप्रवर, ज्ञानिशिरोमणि, कर्मयोगकी आदर्श मूर्ति श्रीगोयन्दकाजीका यशःशरीर अमर है, अमर है, अमर है। ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः।

'तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सत्यं परं धीमहि

[अहिंसा परमो धर्मः]

(लेखक—स्व० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

जैसे तेल और सुगन्धि, दोनोंके मिलनेसे इत्र कहलाता है, उसी प्रकार प्राण और वासना दोनोंके मिश्रणको चित्त कहते हैं। चित्त और चेतन अर्थात् आत्मा दोनों पृथक् तत्त्व हैं। चित्त दृश्य है और आत्मा द्रष्टा है। चित्त विकारवश है और आत्मा निर्विकार है। चित्त परतन्त्र है और आत्मा स्वतन्त्र है। चित्त आदि और अन्तवाला है, आत्मा अनादि और अनन्त है। चित्तको ही हर्ष, शोक, क्रोध, भय, मोह और ममता होती है, आत्मा इन सबसे परे है। अतएव चित्त और आत्मामें साम्य नहीं है।

चित्तमें वासना है, आत्मामें नहीं। आत्मामें इच्छाकी स्फूर्ति होनेपर चित्तरूप होकर आत्मा चित्त-द्वारा भोग भोगता है, इस कारण वह जन्म-मरणको प्राप्त होता रहता है। इसी कारण वह अनेक शरीर धारण करता है और छोड़ता है। सबका कारण भोगकी इच्छा है। भोगेच्छाका नाश हो तो वह मुक्त हो जाय।

चित्तका आधार आत्मा है और आत्मा स्वतन्त्र है। लोग समझते हैं कि मेहनत करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। पर धन सकाम पुण्यका फल है और ज्ञान निष्काम पुण्यका फल है। जिसको ज्ञान-प्राप्ति करनी है, उसे धन प्राप्त नहीं होगा। उसे कामचलाऊ धन हो सकता है और यदि धन होगा भी तो वंश-परम्परागत प्राप्त धन होगा, जैसे राजा या धनवान्के घर जन्म अथवा थोड़े प्रयत्नसे अचिन्त्य धनकी प्राप्ति।

सकाम पुण्य भी तीन प्रकारके हैं। आन्तरिक उमंगसे, पर-प्रेरणासे और बहुत दबावमें पड़कर किये जानेवाले। क्रमशः इनसे धनप्राप्ति होती है। परसेवासे धनप्राप्ति होती है और बहुत आयाससे भी धनप्राप्ति होती है। ये मुख्य भेद हैं, पर अवान्तर बहुत भेद होते हैं। निष्काम पुण्यके भी इसी प्रकार तीन भेद हैं—योगी अथवा ज्ञानीके यहाँ जन्म, यह उग्र निष्काम पुण्यका फल है। निष्काम पुण्यवालेका 'योगक्षेम' ईश्वर वहन करते हैं।

यदि ज्ञान, शान्ति, मुक्ति अथवा जन्म-मरणसे छुटकारा चाहिये तो विशेष प्रवृत्ति छोड़कर **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'**—इस भगवद्वाक्यको याद करो। भगवान्की शरणमें जाओ। यदि ज्ञानका मार्ग पकड़ते हो तो एक-एक बात सोचकर करो, विवेकका आदेश लिये बिना कुछ न करो। जिस कामको करनेका विवेकका आदेश न मिले, उसे न करो। भोगेच्छाका त्याग करो। यह जगत् निश्चित है, अनादि युगसे आजतक वह निश्चित रहा और आगे भी निश्चित रहेगा। कौन कब राज्य करेगा, कब मरेगा, कब जन्मेगा, कब प्रलय होगी, सब निश्चित है। यह समझकर 'मैं यह करता हूँ, मैं वह करता हूँ'—इस भावनाको त्याग दे और भगवान् जो देहसे कराते हों उसे करते जाओ। बिना आसक्तिके, बिना ममताके।

हमारे यहाँ एक जादूगर आया था। जादू और नाटक, इन दोनोंके द्वारा तत्त्वज्ञान समझा जा सकता है। उस जादूगरके जानेके बाद एक सज्जन कहने लगे कि कलकत्तेमें एक जादूगर आया था। उसने एक नया तमाशा दिखाया। वहाँके पुलिस-सुपरिंटेंडेंटको भी देखनेकी इच्छा हुई। वह अंग्रेज था। वह दो-

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तीन आदमियोंके साथ जादूगरके पास गया। खेल एक पुराने मकानके खंडहरमें बगीचेके सामने शुरू हुआ। जादूगर और उसका लड़का, दो ही तमाशा दिखलानेवाले थे। तमाशा शुरू करते ही उसने जमीनमेंसे एक लम्बी रस्सी खींचकर निकाली और उसको सीधा खड़ा कर दिया। उस आठ-दस हाथ निकली लम्बी रस्सीके ऊपर दूसरा वह लड़का चढ़ गया। ऊपर जाकर उलटा सो गया। जादूगरने नीचे उस रस्सीमें आग लगा दी। रस्सीके साथ-साथ वह लड़का जलकर खाक हो गया। यह सारा काम पुलिस-कप्तानके सामने हुआ। उसने इसके तीन फोटो ले लिये। पश्चात् जादूगरने लड़केको ज्यों-का-त्यों बुलाकर सबके सामने उपस्थित कर दिया। तमाशा खतम हो गया। पुलिस-अफसर प्रसन्न होकर पैसा देकर चले गये। घरपर फोटो धुलवाकर देखा कि तीनों फोटोमें केवल वह मकान, वह जादूगर और उसके पास खड़ा वह लड़का—इन तीनोंके सिवा और कुछ नहीं है। रस्सीका पैदा होना, लड़केका उसपर चढ़ना और लड़के और रस्सीका जलकर भस्म हो जाना—इनका उनमें नामोनिशान भी न था।

यह समझनेकी बात है। जिस प्रकार जादूगरकी कारीगरीसे यह सब होता हुआ दीखा, पर वस्तुतः कुछ भी नहीं हुआ था। केवल जादूगर और उसका लड़का दो ही थे। इसी प्रकार वास्तवमें परमात्मा ही है। जगत् और उसकी क्रियाशक्ति केवल माया है। फोटोमें केवल जादूगर और उसका लड़का आया। इसी प्रकार ज्ञानसे विचारनेपर, समाधिमें देखनेपर एक चेतन ही दीखता है। जगत् कदापि नहीं दीखता। हमारा शरीर और इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति परमात्माके जादूमें हो रही है। माण्डूक्य उपनिषद्पर गौडपादाचार्यने कारिका लिखी है, उन कारिकाओंके कठिन होनेके कारण श्रीशंकराचार्यने उनका भाष्य किया है। उसमें गौडपादाचार्यने ऊपर लिखे अनुसार जादूके खेलका दृष्टान्त दिया है। बीसवीं सदीके मेस्मेरिज्मकी अन्तिम शोधका वर्णन जिस जादूमें हुआ है, वह चार-पाँच सदीके गौडपादाचार्यके समयमें था।

जगत् जीवात्माको फँसानेके लिये है। वह जबतक जीवित है, तबतक 'अब यह करूँ, अब वह करूँ'के चक्करमें पड़ा रहेगा। मुझे भी ऐसा ही हुआ, कुछ दिन पहले मैं भी कहता था कि मैं देशसेवाका कार्य करता हूँ। पर लोकसेवाके साथ-साथ अनेक मनोरथ उत्पन्न हो गये। यह जगत् मिथ्या है, यह निश्चित है तथा मन जो-जो संकल्प करता है वह संकल्प ही जन्म और मृत्यु प्रदान करनेवाले हैं। सहज तौरपर प्रभु जो आदेश देते हैं, वही होता है। प्रभुका आदेश है या नहीं—यह जानना सहज है। जिसमें देश, काल साधन, शक्ति, संयोग सब अनुकूल हों, उसे ईश्वर इच्छित समझना चाहिये और जिसका भार स[illegible] अपने मनके बलसे उठाना हो, वह अपना इच्छि[illegible] समझना चाहिये। साइकिलपर बैठा आदमी दौड़[illegible] घोड़ागाड़ीको पकड़ता है तो साइकिल बिना पैर हिला[illegible] अपने-आप चलती है। इसी प्रकार मनुष्य जगत[illegible] प्रवाहमें अपने शरीरको लगा दे तो वह थकेगा नहीं।

अहंता और ममता ही थकानेका साधन है। मु[illegible] अब कोई अपेक्षा नहीं है, कोई वासना नहीं है, शरी[illegible] क्षणभरमें छूट जाय तो भी कुछ कहना नहीं है [illegible] न कुछ करना है। सब निश्चित है। इस शरी[illegible] जितना करनेका विधान है, उतना किये बिना [illegible] मरनेवाला नहीं और जो करनेका विधान नहीं [illegible] लाख उपाय करनेपर भी वह होनेको नहीं है। अत[illegible] 'यह किया, यह करता हूँ और यह करूँगा' [illegible] वासना छोड़नेपर ही छुटकारा मिल सकता है। [illegible] बातको समझनेपर ही सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मानव-जीवनका प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति

(लेखक—राष्ट्रसंत श्रीतुकडोजी महाराज)

मानव-जीवनका प्रधान प्रयोजन भगवत्प्राप्ति ही है। अतः हमारे सभी कर्म इसी उद्देश्यसे होने चाहिये। विना भगवत्प्राप्तिके मानव-जीवन अर्थशून्य हो जाता है।

आजकल हम देख रहे हैं कि हमारे देश-जीवनमें धार्मिक मूल्य कम होते जा रहे हैं। मैं तो समझता हूँ कि इससे हमारा पतन ही होगा। कोई भी राष्ट्र धर्मसे ही जीवित रहता है। धर्म-विहीन राष्ट्रका ध्वंस हो जाता है। इसलिये हमें इस बातपर गम्भीरतासे सोचना होगा। जीवनके हर क्षेत्रमें आज जो शोचनीय विकृति उत्पन्न हो गयी है—उसका एकमेव कारण हमारी आध्यात्मिक वृत्तिका अभाव ही है। पञ्चवर्षीय योजनाओंसे हमारा वह उत्थान नहीं हो रहा है, जो महान् उत्थान आध्यात्मिक ज्ञानसे हो सकता है। मनुष्य अपने जीवनमें संयम, सेवा एवं त्याग आध्यात्मिक ज्ञानकी अनुभूतिसे ही सीख सकता है और यही संयम, सेवा एवं त्याग—देशकी उन्नतिका सच्चा पथ है।

राष्ट्र-जीवनमें ये आदर्श गुण दिन-प्रति-दिन कम होते जा रहे हैं। हमारा समाज वस्तुतः आज सहयोगी-समाज नहीं रह गया है। सहयोग एवं सहकार्यका हम नारा अवश्य लगाते हैं; परंतु हमारा सहकार्य सहकार्यका आभासमात्र ही है। पैरोंका मिलना, मिलना नहीं होता। जबतक हम हृदयसे एक नहीं होते तबतक हमारा मिलन केवल ऊपरी मिलन होता है। हमारा सहकार्य होता है—समान स्वार्थसाधनाके लिये किया हुआ समझौता! वह आन्तरिक वस्तु नहीं होती। आध्यात्मिक विकाससे हम 'आत्मवत् सर्वभूतानि' का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। फिर ऐसी अवस्थामें सहयोग-सहकार्य हमारा एक स्वभाव-सा बन जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—यह हमारी वृत्ति बन जाती है। यही है जीवनमें आध्यात्मिक अनुभूतिका मापदण्ड।

चारित्र्य एवं नैतिकताका जो अभाव दीख रहा है—उसका कारण भी यही है कि हमने अपने-आपको नहीं पहचाना। शिक्षाके क्षेत्रमें आजकल नैतिकताका अभाव खटकता है। देशके शिक्षण-मनीषी इस विषयमें चिन्तित हैं। राष्ट्रपति श्रीराधाकृष्णन्‌जीने इसका जो उपाय बतलाया है, वह समझनेकी चीज है। वे कहते हैं कि पाठशालाओंमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षाको अनिवार्य करना चाहिये। आपने धार्मिकतापर जो जोर दिया है—वह आपकी उत्तम सूझ है। परंतु आज केवल शिक्षा-क्षेत्रमें ही नहीं, जीवनके हर क्षेत्रमें आध्यात्मिक शिक्षाकी अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा करनेपर ही वर्तमान दूषित वायुमण्डल शुचितासम्पन्न हो सकेगा, दूसरा मार्ग नहीं है।

अन्तमें मैं यही कहूँगा कि आध्यात्मिक साधनोंको अपनाकर भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलनेमें ही सब कुछ निहित है। व्यक्ति-विकास, समाज-विकास, राष्ट्र-विकास, विश्व-विकास—आदि सब इसीमें आ जाते हैं।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रामायणमें श्रद्धा, प्रेम और आचरण आदिकी शिक्षा*

(लेखक—ब्र० श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

रामायणसे हमलोगोंको श्रद्धा, प्रेम, आचरण आदिकी शिक्षा लेनी चाहिये । श्रद्धाकी पराकाष्ठा है कि 'श्रद्धेयकी आज्ञा और संकेतके अनुसार चलना ।' जहाँ उसके अनुसार चलना नहीं बनता, वहाँ प्राणोंका रहना कठिन हो जाता है । और प्रेमकी पराकाष्ठा है प्रेमास्पदके वियोगका अत्यन्त असह्य होना । प्रेमास्पदके वियोगमें प्रेमीके प्राणोंका रहना कठिन हो जाता है—जैसे राजा दशरथ-का भगवान् राममें प्रेम था तो रामका वियोग होनेसे उनके प्राण चले गये । भगवान् रामकी दशरथजीमें श्रद्धा थी । यद्यपि पिताने अपने मुखसे तो वन जानेकी आज्ञा नहीं दी थी; किंतु कैकेयीको वरदान दे दिया था, तब उसीमें उनकी आज्ञा मानकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नताके साथ राज्यका त्याग करके, सीताजी, माता कौसल्याजी और लक्ष्मणकी राय न होनेपर भी, वनमें चले गये और भरतजीके अनुरोध करनेपर भी वापस नहीं लौटे।

भगवान् राममें सीताजीका प्रेम भी बहुत सराहनीय है। भगवान् रामने वन जाते समय सीताको वनके भयंकर कष्टोंको बतलाकर सास-ससुरकी सेवाके लिये अयोध्यामें रहनेका अनुरोध किया; किंतु सीताने कहा—'प्रभो! ये सब वनके क्लेश आपके वियोगके सामने कुछ भी नहीं हैं, अतः आप मुझे साथ ले चलिये तथा यह भी कहा—

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान ॥

(रा० च० मा० अयो० ६७)

भगवान् रामने समझ लिया कि इसको हठपूर्वक यहाँ रक्खा जायगा तो यह प्राणत्याग कर देगी, वनमें जानेका आग्रह नहीं छोड़ेगी, अतः वे उसे अपने साथ ले गये । यदि कहें कि 'जब रावण सीताको ले गया और वे लंकामें रहीं, तब उनके प्राण कैसे रहे ?' तो उसका कारण यह है कि वे भगवान्का जप-ध्यान कर रही थीं, उनके प्राण मानो कारागारमें बंद हो गये थे। वह ध्यान ही उस कारागारका किंवाड़ था । नेत्र अपने चरणोंमें लगाये थीं, यही ताला था और भगवान्के नाम-का निरन्तर जप पहरेदार था। अतः उनके प्राण जाने-का कोई रास्ता ही नहीं रहा । भगवान् श्रीरामके यह पूछनेपर कि सीता अपने प्राणोंकी रक्षा किस प्रकार करती है ? हनुमान्जीने बताया—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

(रा० च० मा० सुन्दर० ३०)

इसपर यदि कोई कहे कि 'जब श्रीरामके द्वारा सीताका सदाके लिये त्याग हुआ, तब उनके प्राण कैसे रहे ?' इसका उत्तर यह है कि उस समय भगवान् रामने लोकापवादके कारण लक्ष्मणको आदेश दिया था कि तुम वाल्मीकि-आश्रमके पास सीताको छोड़ आओ, अतः उसमें भगवान् रामकी आज्ञा थी और श्रद्धेयकी आज्ञाका पालन करना श्रद्धालुका परम धर्म है; इसलिये उन्होंने उसे भगवान्की आज्ञा मानकर ही प्राणोंको रक्खा था । सीताने लक्ष्मणसे उस समय कहा भी था कि मेरे उदरमें गर्भ है, नहीं तो, मैं अभी प्राणत्याग कर देती, वंशकी रक्षाके लिये ही मैं प्राणधारण करती हूँ ।

इसी प्रकार शत्रुघ्नका भी भगवान् राममें बहुत उच्चकोटिका श्रद्धा और प्रेम था । वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है कि लवणासुरको मारनेका प्रश्न

---

* परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजीने अपने भौतिक देहका परित्याग कर दिया । यह लेख उनकी रुग्णावस्थामें पहलेका लिखाया हुआ है । 'कल्याण'के पाठकोंको यह जानकर आनन्द होगा कि अभी चार लेख और भी उनके लिखवायें हुए हैं, जो क्रमशः प्रकाशित होंगे ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आनेपर श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्ताव किया—'लवणासुरको कौन मारेगा ?' इसपर भरतजी बोले—'लवणासुरको मैं मारूँगा, उसे मारनेका काम मुझे सौंपा जाय।' तब शत्रुघ्नजीने कहा—'प्रभो ! मझले भैया तो अनेकों कार्य कर चुके हैं, नन्दिग्राममें तपस्याका कष्ट भी बहुत उठा चुके हैं, अतः अब इस सेवकके रहते इनको और कष्ट न दिया जाय।' भगवान्ने कहा—'बहुत अच्छा, शत्रुघ्न ! तुम जाओ और लवणासुरको मारकर वहाँका राज्य तुम्हीं करो, मैं जो कहता हूँ उसके विरोधमें कोई उत्तर न देना।' शत्रुघ्नजी बहुत लज्जित हुए और बोले—'नाथ ! बड़े भाइयोंके रहते छोटेका राज्यपर अभिषेक उचित तो नहीं, पर अब मुझे तो आपकी आज्ञाका पालन करना है, वास्तवमें भैया भरतजीके प्रतिज्ञा कर चुकनेपर मुझे कुछ बोलना ही नहीं चाहिये था, जैसा मैंने अपराध किया वैसा दण्ड पा लिया। मैं बीचमें न बोलता तो आप क्यों मुझे वहाँ जाकर राज्य करनेको कहते।' फिर वे दुःखित हृदयसे वहाँ गये और लवणासुरको मारकर वहाँका शासन करते रहे।

जब भगवान् राम परमधाम पधारने लगे, तब उन्होंने मित्रोंको, भाइयोंको सबको बुलाया। शत्रुघ्नजी यह सोचकर कि भगवान् राम मुझे कहीं यहीं रहनेकी आज्ञा न दे दें। भगवान्के पास आये और बोले—'आप सदाके लिये परमधाम पधार रहे हैं, अतः मैं भी आपके साथ चलूँगा, आप मुझे इसके विपरीत आज्ञा न दें, यह मैं आपसे धृष्टता करता हूँ; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन मेरेद्वारा हो।' शत्रुघ्नजी भगवान्के वियोगको सहन नहीं कर सकते थे, अतः भगवान् उनको भी साथ ले गये।

पद्मपुराण पातालखण्डमें वर्णन आता है कि लोकापवादके कारण भगवान् रामने शत्रुघ्नको आज्ञा दी कि तुम सीताको ले जाकर वाल्मीकि-आश्रमके पास छोड़ आओ, यह सुनकर वे मूर्च्छित हो गिर गये। स्वामीकी आज्ञाका पालन नहीं होनेपर शत्रुघ्नजीकी ऐसी दशा हो जाती है। शत्रुघ्नजीका चरित्र अधिकांशमें भरतजीके साथ ही है; इसलिये जैसा भरतजीका श्रद्धा और प्रेमका भाव था, उसीके समान ही शत्रुघ्नजीका भी समझ लेना चाहिये।

लक्ष्मणजीका भी भगवान् राममें श्रद्धा और प्रेम अपार था। लक्ष्मणजी प्रारम्भसे अन्ततक भगवान् रामके साथ रहे। अपनी इच्छासे कभी अलग नहीं रहे। कहीं रहे तो उनकी आज्ञासे ही रहे, पर वह भी बहुत ही कम।

वन जानेके समय श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—'भाई भरत और शत्रुघ्न यहाँ नहीं हैं, पिताजी वृद्ध हैं और उनके मनमें मेरा दुःख है, अतः तुम यहीं रहकर माता-पिताकी सेवा करो' यह सुनते ही लक्ष्मणजी प्रेमके कारण बहुत ही व्याकुल हो गये और भगवान्के चरण पकड़कर बोले—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं।
लागि अगम अपनी कदराईं॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबंधु उर अंतरजामी॥
मन क्रम बचन चरन रत होई।
कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

(रा० च० मा० अयोध्या० ७१। १, ३, ४,)

भगवान्ने सोचा कि 'यह मेरे वियोगमें प्राणोंका त्याग कर देगा।' इसलिये उन्होंने कहा—'माता सुमित्राकी आज्ञा ले आओ।' लक्ष्मणजीके द्वारा आज्ञा माँगनेपर सुमित्रा बोलीं—

जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

(रा० च० मा० अयोध्या० ७३। २, ७४। ३)

तब लक्ष्मणजी हर्षपूर्वक श्रीरामके साथ वनमें चले गये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

जब श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी लक्ष्मणके प्रति यह आज्ञा हुई कि 'लोकापवादके कारण मैंने सीताका त्याग कर दिया है, अतः तुम वाल्मीकि-आश्रमके पास ले जाकर सीताको छोड़ आओ।' तब सीताको वनमें छोड़ आना उनके लिये बड़ा ही कठोर कार्य था; फिर भी उन्होंने श्रद्धाके कारण ही इस कठोर आज्ञाका पालन किया; क्योंकि श्रद्धालुके लिये श्रद्धेयकी आज्ञाका पालन न करना मरणके समान है।

वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका प्रसंग है। साक्षात् काल तपस्वीके वेषमें भगवान् रामके पास आये और उन्होंने भगवान्से यह स्वीकार करा लिया कि हमारी बातचीत एकान्तमें हो और बातचीतके समय बीचमें कोई आ जाय तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया जाय। लक्ष्मणजीको पहरेपर बैठा दिया। उस समय दुर्वासा ऋषि आये और बोले—'मुझे श्रीरामसे अभी बात करनी है।' लक्ष्मणने कहा—'अभी ठहरिये।' दुर्वासाजी बोले—'लक्ष्मण! तुम इसी क्षण श्रीरामचन्द्रजीसे मेरे आनेकी सूचना दे दो, नहीं तो मैं सबको शाप दे दूँगा।' लक्ष्मणने सोचा—'सबका नाश नहीं होना चाहिये, मेरे प्राण भले ही चले जायँ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने भीतर जाकर श्रीरामचन्द्रजीको सूचना दे दी कि 'दुर्वासाजी आये हैं और आपसे अभी मिलना चाहते हैं।' लक्ष्मणजीकी बात सुनकर भगवान् राम कालको विदा करके दुर्वासाजीसे मिले और उनका आतिथ्य-सत्कार किया। फिर कालके वचनोंका स्मरण आनेपर उन्होंने वसिष्ठजीसे राय ली कि 'न्यायसे तो लक्ष्मणको प्राणदण्ड देना चाहिये, पर मैं भाईको प्राणदण्ड कैसे दूँ?' वसिष्ठजीने कहा—'श्रेष्ठ पुरुषोंको त्याग देना ही उनके लिये प्राणदण्डके समान है।' तब श्रीरामजीके द्वारा लक्ष्मणजीका त्याग हो गया, पर लक्ष्मणजी प्रेमके कारण भगवान्के वियोगको सह नहीं सके, इसलिये सरयूके निकट जाकर उन्होंने प्राणत्याग कर दिये। कैसा अलौकिक प्रेम है।

इस प्रकार लक्ष्मणजीके बर्तावमें भी स्थान-स्थानपर श्रद्धा और प्रेमका भाव मिलता है।

भरतजीका तो भगवान् राममें बहुत उत्तम श्रद्धा और प्रेम था ही। वे तो श्रद्धा और प्रेमकी मूर्ति ही थे। जब उन्होंने सुना कि मेरे कारण ही भगवान् राम वन गये हैं, तब माता कैकेयीसे उन्होंने न कहने योग्य बातें कहीं और भगवान्को लौटा लानेके लिये वे चित्रकूट चले गये। भगवान् श्रीराम कोशिश करनेपर नहीं लौटे, बल्कि आज्ञा दी कि 'पिताजीने मुझको चौदह वर्षके लिये वन दिया है और तुमको राज्य दिया है। इसलिये तुम जाकर चौदह वर्ष राज्य करो।' भरतजीको भगवान्का वियोग असह्य था, किंतु श्रद्धाके कारण वे अयोध्या वापस आ गये। चित्रकूटसे लौटते समय उन्होंने भगवान्से कहा—'यदि चौदह वर्षकी अवधिके बाद तुरंत आप नहीं पहुँचेंगे तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।' वे आकर नन्दिग्राममें संयम-नियमपूर्वक रहने लगे और जब अवधिमें एक दिन शेष रह गया, तब भरतजी प्रेमके कारण इतने व्याकुल हो गये कि उनके प्राणोंका रहना कठिन हो गया। उनका इतना प्रेम था कि यदि समयपर भगवान् नहीं पहुँचते तो उनके प्राण रहते ही नहीं। वे कहते हैं—

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥
(रा० च० मा० उत्तर० प्रारम्भकी चौपाई ४)

उनकी उस समयकी विरह-दशाका वर्णन करते हुए श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥
(उत्तर० १ क, ख)

जब हनुमान्‌जीसे उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान् रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और सीताजीसहित पधार रहे

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

हैं तो उनकी प्रसन्नताकी कोई सीमा नहीं रही। जैसे कोई मछली जलके वियोगमें तड़फती हो और उसको जलमें डाल देनेसे उसके प्राण बच जाते हैं, वैसी ही दशा भरतजीकी हुई। भरतजीका कितना उच्चकोटिका प्रेम था कि भगवान्‌के वियोगमें एक क्षण भी उन्हें युगके समान प्रतीत होता था। यह है प्रेमकी पराकाष्ठा। कहाँतक लिखा जाय—भरतजीका तो सारा जीवन ही श्रद्धा और प्रेमसे ओतप्रोत था।

इसी प्रकार श्रीहनुमान्‌जी आदि भक्तोंकी भी भगवान्‌में बड़ी ही श्रद्धा थी। हनुमान्‌जी सदा भगवान् रामकी आज्ञामें तत्पर रहते थे। वे प्राय: भगवान्‌के साथ ही रहे। कहीं कभी अन्यत्र गये, जैसे सीताकी खोजके लिये गये, लक्ष्मणजीके शक्तिबाण लगकर मूर्च्छित हो जानेपर जड़ी-बूटी लानेके लिये गये, भरतको अयोध्यामें भगवान् रामके पधारनेका संदेश देनेके लिये गये, तो वहाँ वे भगवान् रामकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही गये थे। हनुमान्‌जीने दासकी भाँति भगवान्‌के चरणोंमें रहकर उनकी आज्ञाओंका पालन किया था। उनकी महिमा क्या लिखी जाय, भगवान् स्वयं अपनेको उनका ऋणी मानते थे—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
(रा० च० मा० सुन्दर० ३१। ३-४)

भगवान् श्रीराम तो मर्यादापुरुषोत्तम थे। उनके सारे ही चरित्रोंमें त्याग, श्रद्धा, प्रेम, विनय, दयालुता, सुहृदता, उदारता, भक्तवत्सलता, प्रजावत्सलता, सदाचार, गुरुजनोंका सम्मान, धर्म, नीति आदि-आदि अनन्त गुण भरे हुए हैं।

भगवान् श्रीरामका माता कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके साथ भी बड़ा ही उच्च कोटिका आदर-सम्मान और श्रद्धाभक्तिसे पूर्ण व्यवहार था। हमलोगोंको भी उनकी भाँति अपने माता-पिता आदिके साथ आदर और भक्तिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। जब वनवासके बारेमें माता कैकेयीने बतलाया कि 'तुम्हारे पिताने मुझे दो वरदान देनेके लिये प्रतिज्ञा की थी और मैंने जो अच्छा लगा, सो माँग लिया; पर उनको तुम्हारा संकोच हो रहा है। एक ओर तो पुत्र-स्नेह है और दूसरी ओर प्रतिज्ञा। तुम चाहो तो उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर सकते हो।' इसपर भगवान् रामने कहा—'यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य है और बहुत आनन्दकी बात है।'

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
(रा० च० मा० अयोध्या० ४०। ४—४१)

इतना ही नहीं, श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीसे भी कहा कि तुम माता कैकेयीके साथ बुरा बर्ताव मत करना और जब लक्ष्मणजीने कैकेयीपर दोष लगाया तो उनसे भी कह दिया कि तुमको माता कैकेयीपर दोष नहीं लगाना चाहिये। वन देनेवाली माता कैकेयीके प्रति भी उनका सदा श्रद्धा और पूज्यभाव ही रहा। यह बहुत ही उच्चकोटिका आदर्श है। भाइयोंके साथ भी भगवान् रामका बहुत ही प्रेमका व्यवहार था। जब वे बाल-अवस्थामें भाइयोंके साथ खेला करते थे, उस समय भाइयोंको प्रसन्न करनेके लिये स्वयं हारकर भाइयोंको जिता दिया करते थे। श्रीभरतजीने बतलाया है—

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(रा० च० मा० अयोध्या० २५९। ४)

महाराज दशरथने भगवान् रामको राज्यतिलक करनेका विचार किया, उस समय भगवान् रामने उस बातको जानकर पश्चात्ताप करते हुए कहा—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
(रा० च० मा० अयोध्या० ९ । ३-४)

इस प्रकार उनको अपने राज्याभिषेककी बात बहुत ही अनुचित प्रतीत हुई। यह भाइयोंके प्रति कैसा प्रेमका भाव है।

मित्रोंके साथ भी आपका प्रेम अतुलनीय था। जब आप सीता-वियोगके संकटमें पड़े हुए थे, वैसी अवस्थामें भी सीताकी सुधि भुलाकर आपने मित्र सुग्रीवका कार्य पहले सम्पन्न किया। वहाँ आपने मित्रके धर्म बताते हुए कहा है—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
(रा० च० मा० किष्किन्धा० ६ । १, ३)

फिर मित्र सुग्रीवको आश्वासन भी देते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥
(रा० च० मा० किष्किन्धा० ६ । ५)

भगवान् श्रीरामकी भक्तवत्सलता भी अनुपम थी। जिस समय भक्त विभीषण उनकी शरणमें आया, उस समय सुग्रीव आदिने उनको कैद करनेकी राय दी; किंतु भगवान् रामने कहा—'कैसा भी कोई क्यों न हो, मेरी शरण आनेपर मैं उसका त्याग नहीं कर सकता। शरणागतका भय-निवारण करनेकी मेरी प्रतिज्ञा है।'

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
(रा० च० मा० सुन्दर० ४२ । ४, ४३ । १)

अध्यात्मरामायणमें भी भगवान् श्रीरामने इसे अपना व्रत (प्रण) बतलाया है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
(युद्ध० ३ । १२)

"मेरा यह नियम है कि जो एक बार भी मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय माँगता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।"

इसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम प्रजाके प्रति भी बड़ा ही प्रेम रखते थे। वे राज्यका शासन इस प्रकार मर्यादासे करते थे कि राम-राज्यके समय प्रजाको बड़ी सुख-शान्ति थी। उनका राज्य-शासन भी अतुलनीय था। श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
(रा० च० मा० उत्तर० १९ । ४; २०; २१ । १-२-३)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामका तो सारा ही चरित्र परम आदर्श और अनुकरणीय है। हमलोगोंको उनका अनुकरण करना चाहिये। जब भगवान् रामका चरित्र पढ़ने-सुनने और कहनेसे ही मनुष्यका मन पवित्र हो जाता है, फिर उनका अनुकरण करनेसे परम लाभ हो, इसमें तो कहना ही क्या है।

ऊपर तुलसीकृत, वाल्मीकीय और अध्यात्मरामायण तथा पद्मपुराणके कुछ रामचरित्रसम्बन्धी शिक्षाप्रद प्रसङ्गोंका दिग्दर्शन कराया गया है। उनका विस्तार पाठकोंको मूल ग्रन्थोंमें अर्थसहित देखना चाहिये एवं उनके भावोंको हृदयमें धारण करके उनके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भले शब्दोंकी प्रचण्ड शक्ति

क्या आपने इसका कभी अनुभव किया है ?

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण)

भद्रं श्लोकं श्रूयासम्। (अथर्ववेद १६।२।४)

अर्थात् मैं सदा भला शब्द ही सुना करूँ।

एक बार असुरोंने इन्द्रपुरीको घेर लिया। उनके पास बड़ी सुसज्जित सेना थी। हर प्रकारके हथियारोंसे सज्जित हो उन्होंने युद्धके लिये इन्द्रको ललकारा।

'हमारा युद्धमें सामना करो। हम अपने बाहुबलकी शक्तिसे तुम्हें परास्त करना चाहते हैं। यदि हमसे डरते हो तो हार स्वीकार करो। इन्द्रपुरी हमारे हवाले करो।'

विशाल असुर-सेनाको देख महाप्रतापी इन्द्र एक बार तो काँप उठे। 'बहुसंख्यक शत्रुके सामने मुट्ठीभर देवतालोग क्या कर सकेंगे ? मेरी पराजय निश्चित-सी है। यों तो मेरी इन्द्रपुरी ही छिन जायगी। अब तो किसी बाह्य दैवी शक्तिसे सहायता लेनी चाहिये। अपनी सीमित शक्तियोंसे तो इन्द्रपुरीकी रक्षा होती नहीं दीखती।'

उनके सामने प्रश्न था, 'असुर कैसे मारे जायँ ?'

भगवान्ने सलाह दी, 'केवल शब्दशक्तिके देवता ॐकी सहायतासे ही आप सबमें नव प्राण और नव उत्साहका संचार सम्भव है। वे ही मेरी शक्तिके स्रोत हैं। उनकी कृपासे मुर्दा दिलमें नयी शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। आप उन्हींके पास जाइये और उनसे शब्द-शक्ति ग्रहण कीजिये। भले शब्दोंमें भी प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है। उसकी साधना कीजिये।'

महाराज इन्द्रको कुछ धैर्य हुआ। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे ॐ (ओम्) देवके पास पहुँचे। मुँहपर अमित शान्ति और धैर्यकी साक्षात् मूर्ति ॐके दर्शनमात्रसे उनमें शक्तिका संचार हुआ।

इन्द्रने ॐसे कहा, 'हे भगवान्के शक्तिस्वरूप ॐ! आप शब्दशक्तिके देवता हैं। हम आपको अपना नेता बनाकर असुरोंकी सेनासे युद्ध करना चाहते हैं। आप ईश्वरकी शक्ति और सामर्थ्यके रूप हैं। आपके नामके उच्चारणमात्रसे हम देवताओंमें नयी शक्ति और नयी स्फूर्ति आयेगी। आपके नामके प्रत्येक स्वरमें प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है। आपका नाम उच्चारण करते रहनेसे हममें निरन्तर साहसका प्रादुर्भाव होगा। इस संकटके समयमें हमारे नेत्र आपपर लगे हुए हैं। हे स्वरदेवता! हमारी सहायता कीजिये।'

'ओम्' (ॐ) सोचते रहे। देवताओंपर बड़ा संकट था। उन्हें वीरता, साहस, धैर्य, उत्साहवर्धक शब्दोंकी आवश्यकता थी। उनके शरीरमें हाथ, पाँव, नाक, मुँह सभी तो था। केवल आत्म-विश्वास और साहस कमजोर पड़ गया था। उत्साहवर्द्धक शब्दोंसे उनके वे ही शरीर फिर शक्तिशाली बन सकते थे। उनके लिये शब्दोंकी शक्तियोंकी योजना करनी होगी।

देवताओंकी विनयपर उन्हें दया आ गयी। ओम् एक शर्तपर देवताओंको दिव्य सहायता देनेको तैयार हुए।

सबने पूछा, 'हे देव! कहिये आपकी शर्त क्या है ?'

'ओम्' बोले, 'मेरी शर्त इस प्रकार है—

'न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत् स्यादिति॥'

(गोपद ब्रा० १।१।२३)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अर्थात् 'मुझ 'ओम्'को पहले पढ़े बिना ब्राह्मण वेदोच्चारण न करें। मेरे नामका उच्चारण सबसे पहले किया जाया करे। यदि कोई ब्राह्मण मेरा नाम लिये बिना वेद-पाठ कर दे तो वह देवताओंद्वारा स्वीकार न किया जाय।'

'ओम्'के बिना असुर जीते नहीं जा सकते थे। अतः देवताओंने उनकी यह शर्त मान ली। उन्होंने देवताओंकी सेनाका संचालन किया।

पूरी सेनाके सामने वे खड़े थे। वे बोले, 'देवताओ! मेरा नाम उच्चारण करते-करते पूरे धैर्यके साथ आगे बढ़िये। आप सिंधुकी थाह नाप लेंगे। कायरता दूर होगी। शिथिल पगोंमें अटल विश्वासकी शक्ति आयेगी। आज आप अपनी शक्तिको पहचान लीजिये। आपमें दैवी शक्तियाँ सो रही हैं। मेरा नाम लेनेसे वे खुल जायँगी।'

देवताओंकी सेना आगे बढ़ी। घोर युद्ध हुआ। देवताओंकी सेना विश्वास भरे उच्च स्वरमें 'ॐ····ॐ····ॐ ॐ···· ओम्····ओम्'का उच्चारण कर रही थी। उस शब्दकी प्रचण्ड शक्तिसे पूरी सेनामें नयी शक्ति और जोश उमड़ रहा था। वे नये उत्साहसे दानवोंकी बड़ी सेनाको काट रहे थे। थकी हुई सेना जैसे ही 'ओम्' शब्दका उच्चारण करती, वैसे ही उसे नयी शक्ति फिर मिल जाती। उसकी शक्ति अक्षय हो गयी थी। इस शब्द-का चमत्कार संजीवनी शक्तिके समान जीवन और प्राणदायी था।

युद्ध समाप्त हुआ। 'ओम्'की शब्दशक्तिके कारण देवता विजयी हुए थे। सब देवताओंने ॐका जयकार किया।

तबसे ॐ अमर हो गये। थके-हारे, जीवनमें निराश, उत्साहहीन व्यक्तियोंको जीवनमें नवजीवन, नयी प्रेरणा और नयी शक्ति देनेके लिये 'ओम्' शब्द-का प्रयोग प्रचलित हुआ।

संकटमें, विपत्तिमें युग-युगसे जनताने 'ओम्' शब्द-के उच्चारण तथा श्रवणसे आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। नये सिरेसे वे जीवनके मोर्चेपर आरूढ़ हुए हैं।

मैंने सदा परखा है। आप भी देखें तो पायेंगे, हर एक विपत्तिमें मनुष्यको शक्ति और नया साहस देनेवाला यह अद्भुत चमत्कारी 'ॐ' शब्द है।

'ॐ' ब्रह्मबीज है। त्रिविध ओंकाररूपी ब्रह्मका संक्षिप्त रूप है। इसकी ध्वनिमें ऐसा सूक्ष्म कम्पन उत्पन्न होता है कि चारों ओर शक्ति और साहसकी लहरें फैलती हैं। अतः दिनमें कई बार इसका प्रयोग करनेसे, बच्चोंके नामके रूपमें इसे रख लेनेसे दैवीशक्ति-का प्रादुर्भाव होना प्रत्येक समझदार व्यक्ति समझ सकता है।

'ॐ' शब्दका विश्लेषण और महिमा

अ, उ, म् के संयोगसे यह महत्त्वपूर्ण शब्द बना हुआ है। 'ॐ' परमात्माका उत्तम नाम है। वेदादि शास्त्रोंमें परमात्माका मुख्य नाम 'ॐ' ही बताया गया है।

माण्डूक्योपनिषद्में लिखा है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।

अर्थात् 'ओम्' वह अक्षर है जिसमें भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् ओंकारका एक छोटा-सा व्याख्यान है। सभी शक्तियाँ, ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ इसी ओंकारमें भरी हुई हैं।

छान्दोग्य उपनिषद्में 'ओम्'की चमत्कारी महिमा का वर्णन करते हुए लिखा गया है—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् । एषां भूतानां

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः। स एष रसानाᳪ रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः॥ (१ । १ । १—३)

अर्थात् 'ओम्' अक्षर उद्गीथ है। अतः उसकी उपासना करनी चाहिये। सब भूतोंका रससार पृथ्वी है। पृथ्वीका रस जल है। जलका सार ओषधियाँ हैं। ओषधियोंका सार मानवदेह है। मानवदेहका सार वाणी है। वाणीका सार ऋचा अर्थात् वेद है। ऋचाका सार सामवेदद्वारा भगवान्का यशोगान है। सामवेदका सार उद्गीथ है। यह जो उद्गीथ है, वह सब रसोंमेंसे रसतम, सारतम और सर्वोत्कृष्ट है।

यह 'ओम्' सबका श्रेष्ठ आलम्बन है। इसी शक्तिपूर्ण शब्दका सहारा लेकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।

सच मानिये, 'ओम्' की शक्ति अपार है। इसके उच्चारणसे मनुष्यमें शुद्ध और सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं।

विराट्, अग्नि, विश्व आदि परमात्माके नाम 'अ' अक्षरके अंदर सम्मिलित हैं। हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस् आदि 'उ' के अन्तर्गत हैं।

ईश्वर, आदित्य आदि परमात्माके नाम 'म' में आ जाते हैं।

इस प्रकार 'ओम्' शब्दमें अनन्त दैवी शक्तियाँ भरी हुई हैं। 'ओम्'में बल है, बुद्धि है, जीवन है। 'ओम' में इन्द्रियोंका संयम है।

भगवान् श्रीकृष्णने 'ओम्'की महिमाका वर्णन करते हुए गीताके आठवें अध्यायमें लिखा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

अर्थात् जो आदमी मन और इन्द्रियोंको वशमें कर 'ओम्' शब्दका जप करता है, वह ब्रह्मका स्मरण करता हुआ इस भौतिक देहको त्यागकर परम पदको प्राप्त होता है। इस पदको प्राप्त करनेके बाद जीवात्मा जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

बिना इठलाये, बिना दर्प दिखाये

(लेखक—श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

रातमें
शूलोंकी सेजपर सुलाकर
प्रातः
फूलोंकी बाटिकामें जगाते हो,
जिससे
सुरभित रहूँ, सौरभ बखेरूँ,
बिना इठलाये, बिना दर्प दिखाये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

मधुर

महामनोहर शरत्पूर्णिमाकी उज्ज्वल ज्योत्स्नामयी मधुर रात्रि है। सुन्दर यमुनातट है। प्रेमनिधि श्रीकृष्ण आज स्वयं ही प्रेमपाशमें बँधना चाहते हैं। वे यमुना-पुलिनपर पधारकर त्रिभुवनको विस्मरण करा देनेवाले सुमधुर मुरली-सङ्गीतके द्वारा व्रजदेवियोंका आवाहन करते हैं। व्रजदेवियाँ आती हैं। वे व्रजदेवियाँ कैसी हैं और वहाँ क्या होता है?

परम प्रेममयी श्रीराधा
गोपीजन सब कायव्यूह।
कृष्णप्रेम परिपूर्ण हृदय सब
दिव्य पूर्ण रस-भाव-समूह॥
क्षमा-क्रोध, सुख-दुःख, प्रशंसा-
निन्दा, मान-नीच अपमान।
जीवन-मृत्यु, विराग-राग, शुचि-
त्याग-भोग सब, ज्ञानाज्ञान॥
शान्ति-अशान्ति, विवेक-भ्रान्ति सब,
हास्य-रुदन, गायन-चित्कार।
सभी श्याम प्रियतमको लेकर
एकमात्र शुचि कर्म-विचार॥

श्रीराधाजी परमप्रेममयी हैं, श्रीगोपसुन्दरियाँ सब उन्हींकी कायव्यूहरूपा हैं। उन सबके हृदय श्रीकृष्ण-प्रेमसे और दिव्य रस तथा भाव-समूहोंसे परिपूर्ण हैं। उनके क्षमा और क्रोध, सुख और दुःख, प्रशंसा और निन्दा, मान और नीच अपमान, जीवन और मृत्यु, वैराग्य और राग, पवित्र त्याग और सारे भोग, ज्ञान और अज्ञान, शान्ति और अशान्ति, विवेक और सारी भ्रान्तियाँ, हँसना और रोना, संगीत और चीत्कार—सभी पवित्र कर्म और विचार एकमात्र प्रियतमको लेकर होते हैं। (भगवान् श्यामसुन्दरसे सम्बन्ध होते ही समस्त कर्म और समस्त विचार शुद्ध-पवित्र हो जाते हैं और श्रीगोपाङ्गनाओंके सभी कर्म तथा विचार श्यामसुन्दर-को लेकर—श्यामसुन्दरके सुखार्थ ही होते हैं। अतः वे परम पवित्र हैं।)

कृष्णप्रेम-रस-भावित-मति सब
कृष्णमिलन-हित आकुल प्राण।
रहतीं सदा समुत्सुक करने
रूप-सुधा-मधु-रसका पान॥
इह-परके विलास-सुख-भोगों-
का करके आत्यन्तिक त्याग।
कृष्णप्रेममत्ता थीं वे सब
मूर्तिमान प्रियतम-अनुराग॥
पाकर आज अगाध अखण्ड
स्वयं रसराज रसार्णवरूप।
महाभावरूपा व्रजसुन्दरि
सुख-सुषमासे हुईं अनूप॥
इसीलिये श्रीकृष्ण सच्चिदा-
नन्द पूर्ण पर-तम भगवान्।
भगवत्ता सब भूल रसिक
चूडामणि रस-शेखर रसवान्॥
प्रेमविवश स्वेच्छामय वे कर
सहज प्रेमबन्धन स्वीकार।
करने लगे गोपसुन्दरियों-
का रसमय आदर-सत्कार॥
त्यागपूर्ण रस मधुर देखकर
ललचा उठे स्वयं भगवान्।
करने लगे स्वयं रसलोलुप
बन वे रस-याच्ञा मतिमान्॥
नव-नीरद-नीलाभ श्यामघन
मानो दामिनि-दलमें आज।
घन दामिनि, दामिनि-घन अगणित
बीच-बीचमें रहे विराज॥
दिव्य मिलनका उनको करके
दुर्लभ दिव्यानन्द प्रदान।
करने लगे स्वयं उस दिव्य
रसामृतका शुचि सादर पान॥

वे सब गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्ण-प्रेम-रस-भावित-मति थीं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

और सभीके प्राण श्रीकृष्णके मिलनके लिये सदा व्याकुल रहते थे। इस लोक और परलोकके समस्त विलास, सुख तथा भोगोंका आत्यन्तिक त्याग करके वे सब कृष्णप्रेम-मतवाली गोपाङ्गनाएँ प्रियतम श्रीकृष्णके प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप थीं। आज वे महाभावरूपा व्रजसुन्दरियाँ उन स्वयं रसराज अगाध अखण्ड रस-समुद्र-रूपको प्राप्त कर अनुपम सुख-शोभासे सम्पन्न हो गयीं। इसीसे सच्चिदानन्द पूर्ण परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सारी भगवत्ताको भूलकर रसिकचूडामणि, रसशिरोमणि रसवान् बनकर प्रेमवश स्वेच्छासे ही प्रेम-बन्धन स्वीकार करके उन गोपसुन्दरियों-का रसमय आदर-सत्कार करने लगे और उन गोपाङ्गनाओंके मधुर दिव्य रसको देखकर वे स्वयं भगवान् उसके लिये ललचा उठे एवं वे मतिमान् स्वयं रस-लोभी बनकर रसकी याचना करने लगे। वे भगवान् नव-नीरद-नीलाभ श्यामसुन्दर मानो आज मेघरूपसे गोपिकारूप अगणित बिजलियोंके दलमें एक-एक बिजलीके साथ एक-एक मेघके रूपमें बनकर विराजित हो गये। तदनन्तर उन गोप-सुन्दरियोंको अपने दिव्य मिलनका दिव्यानन्द प्रदान करके स्वयं उस पवित्र दिव्य रस-सुधाका आदरके साथ आस्वादन-पान करने लगे।

अन्धेको सब कुछ दरसाई

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री साहित्यरत्न)

बहन कहती—हिमालय भारतके उत्तरमें है। भाई प्रतिवाद करता—नहीं हिमालय कोई दिशा नहीं है, उससे आगे जानेपर वही हिमालय दक्षिणमें आ जाता है। कोई स्थान कहींसे पूर्व है, कहींसे पश्चिम; कहींसे उत्तर तो कहींसे दक्षिण। यह धरती गोल है। इसका कोई ओर-छोर नहीं, कोई दिशा नहीं। बहनके जिज्ञासा उठती—तो फिर लोग दिशाओंको मानते क्यों हैं? 'मूर्ख हैं' छोटा-सा उत्तर देता भाई, जिसमें गर्वकी दुर्गन्ध आती। पर बहनके छोटे-से मनमें मूर्ख और विद्वान्के लिये कोई भेद नहीं था। भाई, उसका भाई था—दिग्विजयी, चौकन्ना, एक-दम समर्थ और बहन—लजीली, प्रज्ञाचक्षु मगर मनभावन। भाईके प्रतापके आगे अच्छे-अच्छे नहीं टिकें, सामर्थ्यके आगे लोग बरबस झुक जायँ। बहन प्रियदर्शिनी, बोलीमें सम्पूर्ण आत्मीयता घोलकर बोलनेवाली, जिसे देख हर व्यक्ति झुक जाय, स्वतः उसका वशंवद हो जाय।

एक आश्चर्य था—बहन जब चले तो गन्तव्य स्वयं सिमटकर उसके पास आ जाय और भाई जब जाय तो दिग्भ्रान्त हो जाय, दिशा स्वीकारे बिना भी दिशा-हीन हो जाय। सदा चौराहेपर ही खड़ा रहे। भाईको स्वयं-को आश्चर्य होता कि यह मूढ़-अन्धी भी कैसे गन्तव्य-तक पहुँच जाती है? कभी कोई शिकायत नहीं करती। एक विचित्र-सी प्रश्न-परम्परा और दाह उठता उसके अन्तरमें। पर उस दाह और प्रश्न-परम्परासे तो वह भटकता ही अधिक था। भाग्यका कोई अस्तित्व नहीं था उसकी दृष्टिमें, किंतु कर्मका फल भी यथोचित नहीं मिल रहा था उसे, जिसके लिये वह अपने निर्दोष प्रयत्नोंको भी सदोष मान लिया करता था। सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र जो ठहरा। समर्थ होकर भी रिक्त था वह, विजयी होकर भी निराश्रित था, पर बहन आत्मलीन, सर्वथा प्रसन्न—मगन रहती थी। भाईकी मनःस्थितिपर उसे अतिशय दुःख था। वह चाहती थी भाई भी संतुष्ट रहे, सुखी—प्रसन्न रहे, किंतु जब कभी वह भाईको समझानेकी चेष्टा करती, एक झिड़की, एक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

व्यंग, एक उपहास मिलता, पर इससे कभी कोई अप्रिय भावना नहीं उभरी, कोई प्रतिक्रिया नहीं उपजी। वह वैसी ही सरल-स्वच्छ-सुन्दर अमर्षहीन बनी रही।

भाईका नाम था 'तर्क' और बहन थी 'श्रद्धा'। तर्क बुद्धिकी सक्रिय किंतु भ्रान्त अवस्था है, श्रद्धा एक दिशादृष्टि है। श्रद्धा जब जगती है तो तृप्ति मिलती है, जो भी मिलता है, वह पूर्ण और प्रीतिकर लगता है। तर्क जब व्याप्त होता है तो सहस्रचक्षु होकर एकके बाद एक प्रश्नोंको लेकर, जिसमें केवल वितृष्णा है, भटकन है। ज्ञानसे विवेक जगता है, अज्ञानसे तर्क और श्रद्धामें जाकर तो मानवकी उज्ज्वल आत्मा आलोकित होती है। जहाँ न प्रश्न हैं, न वितृष्णा। विवेक एक उपलब्धि है, तर्क एक असंयत साधना।

× × ×

पश्चिमी अथवा अनात्मवादी देहपरक विचारधाराने हमको भी प्रभावित किया है। उस संस्कृतिके उग्र प्रभावने हमारी आस्थाकी जड़ें हिला डाली हैं। श्रद्धाके स्थानपर तर्कको प्रतिष्ठित किया है उसने। और परिणाम यह सामने आया है कि आज हम दिङ्मूढ बने एक चौराहेपर खड़े हैं। धर्म श्रद्धाकी ही पद्धति है और नैतिकताका दूसरा नाम; किंतु तर्कका डिण्डिम घोष करनेवालोंने 'पाप और धर्मको दुनियाकी सबसे बड़ी दासता' कहा। हमने भी मान लिया। धर्म और श्रद्धा हेय बन गये। धर्महीन अथवा श्रद्धारहित वातावरणमें अनैतिकताका विष व्यापे तो यह कोई अप्राकृतिक अथवा आश्चर्यजनक घटना नहीं। तर्कके सहारे हम कहाँ आ गये यह हमारा इतिहास बता रहा है। जिस शान्तिके लिये सारी अनात्मवादी सभ्यता लालायित है, आज भारत भी उसी दिशामें जा रहा है—जो उसके पास था उसे खोने जा रहा है। भ्रष्टाचार एक राष्ट्रीय समस्या बन गया है। अनैतिकताका विष अनुदिन बढ़ता जा रहा है। हम विकासमान जो हैं, प्रबुद्ध जो हो गये हैं।

दो उदाहरण हमारे सामने हैं—एक कार्यालयके बाबूका और दूसरा तपती लूमें, विजन-वनमें प्याऊ लगानेवाली बुढ़ियाका। बाबूके पास डायरी है, अपने कामका लिखित प्रामाणिक लेखा-जोखा है, किंतु कामकी मात्रा वही है जो कामका समय बढ़नेसे पहले थी। काम-काजमें वही तर्क और प्रश्न उठते हैं। पत्रोंका सारहीन, अन्तहीन क्रम चलता है। यदि ऐसा न हो तो तर्कका, उन लोगोंकी सक्रिय बुद्धिका प्रभाव क्षीण हो जाय। उधर बुढ़ियामें श्रद्धा है। लेखा-जोखा रखनेका कोई ढंग नहीं रहते हुए भी वह समयपर आती है। ठंडा पानी पिलाना अपना धर्म समझती है। अपने कामके प्रति अटूट श्रद्धा है उसे। उसका धर्म उसकी श्रद्धा है।

× × ×

अन्धेका शाब्दिक अर्थ नेत्रहीन ही नहीं होता वरं जो अपने लक्ष्यको ही तल्लीर्न होकर देखता है, केन्द्रित हो जाता है वह भी इतर वस्तु जगत्‌से दूर हो जाता है, निर्दृष्टि हो जाता है, अन्धा हो जाता है। ऐसी दृष्टि किस कामकी जो विविध रूप दिखाये, मृग-तृष्णामें भटका दे। ऐसी स्थितिमें न द्रष्टाको कुछ मिलता है न दृष्टिकी सार्थकता ही सिद्ध होती है। उस विविध दृश्यावलिमें एकके दर्शन नहीं होते, तर्कमें सुनिश्चित उपलब्धि नहीं; क्योंकि जो आज पाया है कल वही पुराना पड़ जायगा, वही तर्क उसे निरस्त कर देगा। श्रद्धा एकचित्त होकर भी विशाल है। 'सियाराम'को इष्ट माननेवाली श्रद्धामें सारा संसार प्रतिबिम्बित हो जाता है। काँचके शत-शत टुकड़ोंमें एक ही आस्था झलकती है।

ठीक ही तो है 'अन्धेको सब कुछ दरसाई' देखनेके लिये अन्धा होना चाहिये—एकाग्र दृष्टि श्रद्धा चाहिये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

स्मरण

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'भगवन् ! मुझे भय बहुत लगता है ।' महर्षि त्रितका दर्शन करने आये थे महाराज दिव्यभद्र और उनके साथ ही आयी थी राजकुमारी । जब पिता महर्षिसे विदा होनेकी अनुमति लेने लगे तो उस बालिकाने ऋषिके पदोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना की ।

'बालिकाओंके लिये भीरु होना अस्वाभाविक नहीं है ।' ऋषिने अञ्जलि बाँधे, मस्तक झुकाये सामने खड़ी उस दस वर्षकी बच्चीकी ओर देखा ।

'सब मेरा उपहास करते हैं। मुझे तो एकाकी कक्षमें दिनमें जाते भी भय लगता है !' उस राजकन्याके विशाल निर्मल नेत्र भर आये और अरुण सुकुमार अधर काँपने लगे—'भैया कहते हैं कि मैं उनके उपयुक्त बहिन नहीं हूँ ।'

'जब भय लगे, भगवान्‌का स्मरण कर लिया करो !' महर्षिने सहज भावसे कह दिया ।

'भगवान्‌का स्मरण !' बालिका चिन्तामें पड़ गयी ।

'यह अतिशय चपल है ।' महाराजने अपनी कन्याकी कठिनाई सूचित की—'कुछ काल एक स्थानपर तो इसका शरीर स्थिर नहीं रह पाता । इधरसे उधर फुदकती फिरती है । मन कैसे इसका स्मरणमें लगेगा ?'

'युवराज मणिभद्रकी गदा देखी है वत्से ?' ऋषिने इस बार ध्यानपूर्वक राजकुमारीकी ओर देखा और स्नेह-सने स्वरमें बोले—'उससे बहुत विशाल ज्योतिर्मय गदा है श्रीहरिकी ।

'कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत
दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ।'

'शत्रुओंके रक्तसे लथपथ श्रीहरिकी उस अत्यन्त प्रिया कौमोदकी गदाका स्मरण तू कर लिया कर !'

'श्रीहरिके तो कोई शत्रु नहीं । वे तो सबके परम सुहृद् हैं ।' राजकन्याने आश्चर्यसे कहा—'माताजीने तो मुझे यही बताया है ।'

'तुम्हारी माताने सत्य कहा है । श्रीहरि प्राणिमात्रके परम सुहृद् हैं, किंतु उनके आयुध-आभरण उनके समान ही चिन्मय हैं ।' बालिकाके विवेकने ऋषिको सुप्रसन्न किया था । वे समझा रहे थे—'भगवदाश्रित जनोंको उत्पीड़ित करनेवालोंको प्रभुकी गदा स्वयं शत्रु मान लेती है । वह स्वयं नियुक्ता है ऐसे शत्रुओंको शमित करनेमें । इसीलिये वह अत्यन्त प्रिया है हरिकी ।'

राजकन्याका समाधान हो गया । उसने महर्षिको पुनः वन्दन किया और पिताके साथ वह राजसदन लौट गयी ।

× × ×

'भगवन् !' महापूजाके उपकरण समीप रखकर राजकुमार चण्डबाहु दण्डवत्-प्रणिपात करते भूमिपर गिर पड़े । उठनेपर उन्होंने अवधूतके चरण पकड़ लिये । रात्रिके अन्धकारमें उनके अश्रु भले न देखे जा सकें, उनके भरे कण्ठके स्वर टूट रहे थे—'आपके अतिरिक्त और कोई मुझे अवलम्ब नहीं दे सकता ।'

राजकुमार आज सायंकाल विक्षिप्तप्राय राजसदन लौटे थे । क्रोधसे बार-बार पैर पटकते मुट्ठियाँ बाँधकर अधर दंशन करते । अंगारनेत्र राजकुमारके सामने आनेका साहस राजमाता तकको नहीं हुआ था । अपने कक्षमें वे बार-बार 'हुँ' करते चक्कर काटते रहे और प्रहर-रात्रि व्यतीत होनेपर कुछ निश्चय करके स्वयं सामग्री एकत्र करने लगे ।

'मैं एकाकी जाऊँगा !' राजकुमारके आदेशकी अवहेलना करके एक निरवस्त्र अनुचरने उनका अनुगमन किया था । वह शस्त्रसज्ज सावधान सेवक साथ है,

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इसका अनुमान भी राजकुमार नहीं कर सके। अन्धकारमें वह उनसे पर्याप्त दूर रहा है।

राजकुमार आज अपने रथसे गुप्तरूपसे अङ्गनरेशकी राजधानी गये थे। अङ्गराज महाराज दिव्यभद्रसे उनके पिताकी शत्रुता है; किंतु मकरध्वज तो यह सब नहीं देखता। जबसे अङ्गराजकुमारी श्रीजगन्नाथके रथयात्रा-समारोहमें दृष्टि पड़ी, राजकुमार उन्हें किसी प्रकार भूल नहीं पाते। अपने चरोंकी सूचनाके अनुसार राजोद्यानमें राजकन्याके सम्मुख अकस्मात् उपस्थित होकर उसे चकित कर देनेमें वे सफल हो गये थे।

'अनार्योचित कर्म है यह !' राजकन्याने तुच्छ सेवककी भाँति उन्हें झिड़क दिया—'लज्जा आनी चाहिये आपको। तत्काल आप चले नहीं जाते तो भैया मणिभद्रकी गदाके पारुष्यसे परिचित होना पड़ेगा और अङ्गराज्यका कारागार आपका आतिथ्य करेगा !'

राजकन्याने सचमुच सहेलीको सूचना देने भेज दिया था। सिरपर पैर रखकर राजकुमारको भागना पड़ा। इतना तिरस्कार जीवनमें अपमानित होनेका प्रथम अवसर था। राजकुमार क्रोधसे उन्मत्त हो उठे—'इस अभिमानिनीको अपने पैरोंपर डालकर रहना है।'

संकल्प कर लेना सरल है; किंतु उसकी पूर्तिके साधन सोचने लगे तो हृदय बैठ गया। नाममात्रका राज्य है उनका। अङ्गनरेशसे युद्धकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। अङ्गके युवराज मणिभद्रसे द्वन्द्व करने जायँ तो उपचारके लिये भी भवन लौट सकेंगे—कम सम्भावना है। अन्ततः राजकुमारको कुलेश्वर कौलिकका स्मरण आया था।

भयावह अन्धकार, घोर श्मशानभूमि, उलूककी कभी-कभी कर्णवेधी ध्वनि तथा श्रृगालोंका शब्द; किंतु क्रोध एवं क्षोभके आवेशमें राजकुमारने इधर ध्यान ही नहीं दिया था। वे सीधे चलते गये।

जलकर चिताकी लपटें शान्त हो चुकी थीं; परंतु अंगारोंका धूमिल प्रकाश था। कृष्णवर्ण, दीर्घ प्रचण्डकाय, रूक्ष विकीर्णकेश, दिगम्बर अवधूत कुलेश्वर कौलिक जैसे इस शीतकालकी रात्रिमें धूनीके समीप पड़े हों, इस प्रकार उस चिताके पार्श्वमें भूमिपर पड़े थे।

'तू कामक्षुब्ध आया है !' अवधूतने अपने पदोंमें प्रणत, हिचकियाँ भरते राजकुमारको तथा उनके द्वारा लाये गये महापूजाके उपकरणोंको सहजभावसे देखा।

'कामना आपके यहाँ तो अपमानिता नहीं होती देव !' राजकुमारने पुनः पदोंपर मस्तक रक्खा।

'निगमके साधक कामनाको निर्मूल करके परिपूत होते हैं और आगम कामनाका केन्द्रीकरण करके उसमें आत्माहुति देनेका आह्वान करता है।' अवधूत अपनी मस्तीमें बोलने लगे—'शुद्ध सच्चिदानन्द ही महाशक्तिके अङ्कमें सत्त्व, रज, तम होकर प्रतिफलित होता है। ऋषि त्रित चित्‌का साक्षात्कार करते हैं आत्मरूपमें और कुलेश्वर रजोगुणकी चरम परिणतिमें आत्माहुति करके 'शिवोऽहं' कहता है। त्रित और कुलेश्वरमें जो तारतम्य देखे, मूर्ख है वह। किंतु इस गर्वोक्तिको राजसदेह कुलेश्वरका कण्ठ ही व्यक्त कर सकता है। सत्त्वशरीर त्रितको तो सौम्यता प्राप्त हुई जगतीके जीवनमें।'

'तू यह सब समझेगा नहीं।' अचानक बोलते-बोलते अवधूत चुप हो गये। राजकुमारकी ओर दो क्षण देखकर फिर बोले—'तुझे सिद्ध आकर्षण चाहिये! श्रद्धा और संयम सर्वत्र साधनामें अनिवार्य हैं; किंतु तन्त्रके साधकमें लोकोत्तर साहस भी चाहिये। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विस्फुटित हो जाय तो भी साधकका आसन अविचल रहे—कर सकेगा ?'

'कर सकूँगा !' दृढ़स्वर राजकुमारने स्वीकार किया

'अहङ्कारका औद्धत्य !' अवधूतने अट्टहास किया—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

'कोई क्षति नहीं होती शरीरोंके शीर्ण होनेसे । कालीके ग्रास हैं ये देह और तू शाश्वत है । 'स्मरण'से संघर्ष करने चला है तू । महामायाकी इच्छा........ ।'

अवधूतके प्रलापको राजकुमारने नहीं समझा; किंतु अपनेको उन्होंने कृतार्थ माना; क्योंकि अवधूतने उन्हें आकर्षण-प्रयोगकी सम्पूर्ण विधि समझा दी थी और वे गर्व कर सकते थे कि कुलेश्वर कौल-जैसे महासिद्धने मन्त्रदान किया था उन्हें ।

× × ×

'क्या है ?' राजकुमारीने इधर-उधर देखा । अकस्मात् उसकी निद्रा भङ्ग हो गयी थी । कक्षमें मन्द प्रकाश है सुगन्धित तैलप्रदीपका और उसकी दोनों सहेलियाँ शान्त सो रही हैं उसके समीप ही । अन्ततः वह क्यों जाग गयी ? उसकी निद्रामें विघ्न कैसे पड़ा ? आज उसे भय क्यों लग रहा है ?

महर्षि त्रितने आजसे छः वर्ष पूर्व उसे भय-निवारण-का उपाय बतलाया था—'श्रीहरिकी गदाका स्मरण—वह स्मरण तो उसका जीवन बन गया और जब वह आखेटमें अब अपने अग्रजके साथ अश्वारूढ़ होकर निकलती है, बचपनमें उसका उपहास करनेवाले उसके बड़े भाई मणिभद्र अब कहते हैं—'मेरी बहिनके सामने वनराज भी पूँछ दबाकर भागता है । अङ्गराजकुलकी यशोमूर्ति है मेरी अनुजा !' और आज रात्रिमें यह भय—अकारण भय उसी राजकुमारीको ? अपनी शय्यापर ही वह बैठ गयी और मन्द स्वरमें स्तवन करने लगी—

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे
निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-
भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ८ । २४)

लगा कक्ष स्निग्ध चन्द्रिकासे परिपूर्ण हो गया है । चन्द्रोज्ज्वल विशाल गदा आविर्भूत हो गयी है और उससे झर रही है वह स्निग्ध, उज्ज्वल, असीम वात्सल्यधाराके रूपमें एक शुभ्र ज्योत्स्ना । राजकन्याने अपना मस्तक झुकाया और उसे कुछ ऐसा मधुर आलस्य आया कि वह शय्यापर पुनः लुढ़ककर गाढ़ निद्रामें मग्न हो गयी ।

वह रात्रि थी कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी । महा-रात्रिका मुहूर्त जाग्रत् करने राजकुमार चण्डबाहु श्मशानमें बैठा था रात्रिके प्रथम प्रहरसे ही । आज अपना आकर्षण-प्रयोग सम्पूर्ण करके ही आसनसे उठेगा । इसी रात्रिमें, इसी श्मशानभूमिमें अभिमानिनी अङ्गराजकन्या उसके चरणोंपर गिरेगी ।

'ठं ठां ठूं वौषट्' अत्यन्त कर्कश किंतु दृढ़ स्वर गूँज रहा है श्मशानकी नीरवतामें । प्रज्ज्वलित चितामें पड़ी पीत सर्षपकी आहुतियोंकी पूय गन्ध वायुमें भरी है । नीलवसन, रक्तचन्दनचर्चित-देह राजकुमार सर्षपके साथ अपराजिताके पुष्पोंकी अनवरत आहुति चिताग्निमें डाले जा रहा है ।

कङ्काल देह प्रकट हुए, चिल्लाये, नृत्य करते रहे और स्थिर खड़े हो गये । शतशः अदृश्य महानागोंकी फूत्कार वायुमें उठी एवं लीन हो गयी । ज्वालाएँ स्थान-स्थानपर धधकीं, बढ़ीं, बुझ गयीं । राजकुमार अविचल रहा, निष्कम्प रहा और उसका स्वर स्थिर रहा—'ठं ठां ठूं वौषट् !'

राजकुमार तब भी निष्कम्प रहा जब साक्षात् चामुण्डा—श्मशान-कालिका, नीलवसना, करालदंष्ट्रा, कपालमालिका अट्टहास करती चिताग्निसे बाहर ऐसे कूद पड़ी, जैसे साधकके मस्तकपर ही कूद जायगी ।

'ठं ठां ठूं वौषट् ! आनय तां........ ।' अचानक सम्पूर्ण गगनमें जैसे प्रलयाग्नि प्रकट हो गयी । प्रचण्ड ज्वालमालावृता सहस्राशनि-भीषणा अद्भुत अनन्तदीप्ति एक महागदा आकाशमें आयी और चामुण्डा श्मशान-कालिकाने अपने केश नोच लिये । उसके शरीरका

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नीलाम्बर भस्म हो गया क्षणार्धमें । 'ठं !' एक अकल्पनीय दारुण शब्द—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जैसे चूर्ण-विचूर्ण हो गया हो ऐसा विकराल विकट विस्फोट !

आज आप विज्ञानकी कृपासे परमाणु-विस्फोटकी भयंकरताका कुछ अनुमान कर सकते हैं । विश्वके मूलमें जो मातृका बीज है, उन बीजाक्षरोंमें किसीका विस्फोट हो जाय, सृष्टि—कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका कहीं पता नहीं लगेगा । यह तो सर्वेश्वरकी अपार महिमा है कि बीजाक्षरोंका विस्फोट समष्टिमें सम्भव नहीं । वह सदा साधकमें—व्यष्टिमें होता है ।

'ठं' साधकके मस्तिष्कमें उसके बीजाक्षरका विस्फोट हो गया । कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड फट गये मानो उसके मस्तकमें । यह बीजाक्षरपर चिन्मय श्रीहरिकी गदाका स्मरणाघात—राजकुमार उस दिनसे एक असाध्य उन्माद-का आखेट हो गया । वह अकस्मात् दौड़ता, भागता, वस्त्र नोचता और 'ठं' का आर्तनाद करके मूर्छित हो जाया करता था ।

साधु-समुदायकी जनश्रुति तो यह भी है कि उस समयसे आकर्षणके अभिचारके लिये चामुण्डा श्मशान कालिकाका अनुष्ठान वर्जित हो गया है । अनुष्ठान आरम्भ करते ही वह उन्मादिनी हो उठती है और साधकको ही अपना शिकार बना लेती है ।

मनसुख-विरह-शतक

(रचयिता—श्रीजसवंतजी रघुवंशी)

[गताङ्क पृष्ठ ९२१ से आगे]

चतुर्थ तरंग

(४४)

छा रही थी प्राची दिशि ओर
　　लालिमा मधुरिम ललित ललाम ।
विटप-वल्लरियोंपर प्रिय विहग
　　गा रहे थे जय राधेश्याम ॥
रागरंजित मादक उल्लसित,
　　उषाने खोले अपलक पलक ।
खिली थी बाल अरुणके मंजु
　　मदिर अधरोंपर स्वर्णिम झलक ॥
कर रहे थे घण्टे घड़ियाल
　　शंख मन्दिर मन्दिरमें घोर ।
वन्दनाके स्वर सुन भर पुलक
　　कुहकते थे द्वारोंपर मोर ॥
कर रहे थे अवगाहन-स्नान,
　　भक्त-जन, कालिन्दीके कूल ।
भजन-पूजन संध्यासे निबट
　　चढ़ाते थे सिरपर व्रज-धूल ॥
हो रही मन्थर गतिसे दीप्त
　　भव्य रवि नारायणकी शक्ति ।
अर्घ्य दे यमुना जलसे भक्त
　　समर्पित करते श्रद्धा भक्ति ।

(४५)

उठी थी कई दिवसके बाद
　　राधिका होकर आज सचेत
चली वह भी सखियोंके साथ
　　अतः यमुना-नहानके हेतु
हो गया था मृदु तन अति क्षीण,
　　लता-सी लहर-लहर बेहाल

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सहारे सखियोंके हो अवश
चल रही धीमी डगमग चाल ॥
पहुँचते ही व्याकुल हो गयी
देख यमुनाका श्यामल नीर।
छिटक विद्युति-सी चौंकी तड़प,
जग गयी फिरसे सोयी पीर ॥
सँभाला ललिताने तत्काल
बाँहमें बाँह प्रेमसे डाल।
बँध गयी हिचकी कह—'हा कृष्ण',
नयनसे झरने लगे प्रवाल ॥
बँधाया जैसे-तैसे धीर
पुनः कर भाँति-भाँति परितोष।
छलक आते थे फिर भी अश्रु,
नहीं हो पाता था संतोष ॥

(४६)

अन्ततः सबने किसी प्रकार
किया श्रीकालिन्दीमें स्नान।
लगा व्रज-रजका टीका भाल
दिया दीनों दुखियोंको दान ॥
कहा राधाने फिर हो विकल,
चलो सखि वन-विहारको आज।
हो गये हैं कितने ही दिवस,
नहीं देखे मैंने व्रजराज ॥
विशाखे! देखो मुझको हाय!
लगा है जाने कैसा रोग।
हो गयी हूँ मैं कितनी निठुर,
साध बैठी जो ऐसा जोग ॥
छोड़कर मिलना-जुलना सभी
पड़ी रहती हूँ सुखसे गेह।
निभायी मैंने अच्छी प्रीति
श्यामसे कर स्वारथका नेह ॥
हो गयी सो तो हो ही गयी,
न होने दूँगी पर अब चूक।
मिलूँगी नित्य श्यामसे सखी!
वनोंमें कोयलिया-सी कूक ॥

(४७)

सखी! वे आते होंगे नित्य,
न पा करके फिर मुझको वहाँ।
तड़फते होंगे कितने हाय!
अरी! मैं मर जाऊँ कह कहाँ? ॥
चलौ री चलौ न रोको मुझे,
खटकती अब पल-पलकी देर।
नहीं सुनती तुम, देखो अरे,
रहा है मुरलीमें वह टेर ॥
इस तरह भरकर मधुर तरंग
अंगमें, दौड़ चली तत्काल।
चल रही थीं जो कुछ क्षण पूर्व
डगमगा गिरती पड़ती चाल ॥
सखी भी पीछे-पीछे भगी,
सभीमें छाया अनुपम मोद।
छलकता था अतिशय उन्मत्त
सभीके उरमें प्रेम-पयोद ॥
अन्तमें वन-विहारमें पहुँच
घूमने लगीं सभी व्रज-बाल।
पूछतीं कुंजोंको भर नीर—
यहाँ आये थे क्या नँदलाल ॥

(४८)

लताओ! चुप क्यों हो, ओ बेल!
बता तू ही अधरोंको खोल।
नहीं आये थे क्या प्रिय कृष्ण!
गये जो प्राणोंमें रस घोल ॥
कदम्बो! तुम बतलाओ, लता-
बेल तो करती हमसे डाह।
श्यामने रुककर कितनी देर
यहाँ देखी थी मेरी राह ॥
अरे! तुम भी चुप हो, तब ओ
करील भैया! तू ही कर दया।
हाय! मेरा प्यारा घनश्याम
तुझीसे है क्या कुछ कह गया? ॥
और फिर देख सभीको मौन
गया राधेका धीरज छूट।
कर गया सब ही को दुख-मग्न,
विरहकी सरिताका पुल टूट ॥
चली सब होकर विकल निढाल,
उतर आयी जमुनाकी ओर।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

व्यथित ललिताने देखा चौंक
कदम्बोंके झुरमुटकी ओर ॥

(४९)

किनारेपर नीचेकी ओर
झुकी थीं दो डालें अति सघन।
नीरमें श्यामल छवि अवलोक
छू रही हों जैसे प्रिय-चरन ॥
उन्हींमें पीले वस्त्रोंसहित
रुका उलझा है एक शरीर।
झपटकर पहुँची उसके निकट,
हो रहा था मन अमित अधीर ॥
विशाखा ललिता जलमें उतर
डालके ज्यों ही पहुँचीं पास।
चीखकर बोली राधे ! अरे,
देख, यह है मनसुखकी लाश ॥
हाय ! कर, राधा होकर विकल
वहींसे पड़ी नीरमें कूद।
देख प्रियके साथीकी दशा।
हो गयी बेसुध आँखें मूँद ॥
विशाखाने राधा ली थाम,
उठा ललिता मनसुखकी देह।
अन्य सखियोंका आश्रय लिये
किनारे लायी सहित सनेह ॥

(५०)

निरीक्षण कर जानी यह बात,
चल रही है साँसा अति मन्द।
भरा सबके मनमें उस समय
एक अतिशय मीठा आनन्द ॥
निकाला पहले जल कर यत्न,
वसन भीगे सब दिये उतार।
उढ़ा चादर पहुँचाया ताप,
और फिर किये अन्य उपचार ॥
इस तरह बैठे बैठे वहाँ
बीतने चला तीसरा पहर।
खुले तब मनसुखजीके नैन,
हर्षकी लहरी अनुपम लहर ॥
स्नेहसे करती सार सँभाल
चलीं फिर सब बरसाने ओर।
पहुँचते समय क्षितिजमें शेष
दिवाकरकी थी थोड़ी कोर ॥
मनसुखेको समझा बहुभाँति,
सुनाकर स्नेहिल मधुर प्रसंग।
राधिका घर अपने ले गयी
हृदयमें भर अति मोद उमंग ॥

(५१)

अतः फिर कई दिवस तक रहे
मनसुखाजी राधाके गेह।
लुटाते रहे बबा वृषभानु
सहित मैयाके भारी नेह ॥
एक दिन ललिताको ले साथ
गयी राधे संकेत-स्थान।
मनसुखा भी थे उनके संग-
कृष्णका करते थे गुण-गान ॥
आज थीं राधा व्यथित विशेष,
नयनसे बरस रही थी पीर।
विकल थीं ललिता भी कम नहीं,
मनसुखा भी थे अधिक अधीर ॥
एक-से मिल बैठे थे सभी,
बावरे पागल विरही मस्त।
कृष्णमय थे तीनोंके प्राण,
लुप्त था दृगसे जगत समस्त ॥
चाहते थे कहना कुछ सभी,
हो गये थे पर सभी अवाक।
कृष्ण-रस ही, उस क्षण, उस ठौर-
बना था केवल चित्र सवाक ॥

पञ्चम् तरंग

(५२)

पीरकी सीमा हुई विलुप्त
विरहकी गलियोंमें जब डोल।
नयनमें घनीभूत हो गये
चित्र सुधिके तब दशा अबोल ॥
हटी, अकुलाई राधा, चला
नयनसे अविरल अश्रु-प्रवाह।
विकल हो डूबी जिसमें स्वयं-
सुतल, तल, अतल, वितलकी थाह ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

व्यथित अधरोंसे निसरे, विलख,
कृष्णके मीठे नाम ललाम।
कन्हैया, केशव, बाल-मुकुन्द,
मदन-मनहर मोहन, घनश्याम॥
वेणुधर, गिरधर, हे नँदलाल,
मुरारी, दामोदर, गोविन्द!
सलोने ओ मेरे चितचोर!
अरे ओ वृन्दावन-व्रजचन्द!॥
दिखाऊँ कैसे तुमको हाय!
हुआ जो उर मेरेका हाल।
अरे आ एक बार तो देख,
मनसुखा भैयाके गोपाल॥

(५३)

छोड़कर मुझे विलखती कृष्ण
हुए हैं जबसे मुझसे दूर।
हो गये हैं ओ मनसुख वीर!
नयनके तारे दोनों चूर॥
भूल बैठे हैं स्वर पहचान
श्रवण मोहन-स्वरमें हो लीन।
मनसुखे! शेष शक्तिको हाय!
ले गयी निष्ठुर मुरली छीन॥
चुरा अधरोंका, मधु संगीत
दे गया विरह रागकी पीर।
अरे मनसुख भैया! किस तरह–
दिखाऊँ तुझे कलेजा चीर॥
रख गया है छातीपर छली
प्राणलेवा पहाड़-सा भार।
हो गये हैं बिल्कुल बेसुरे
मनसुखे! उर-सितारके तार॥
भटकती हूँ ज्यों कोई पात
भटकता फिरे छोड़कर डाल।
न देगा क्या अब आश्रय कभी
मनसुखा! तेरा प्रिय गोपाल?॥

(५४)

लता, वन, कुंज, वल्लरी आदि
रहे हैं सभी आज भी झूम।
एक मैं ही हतभागिन हाय!
भरे रहती हूँ उरमें धूम॥
कुहकते हैं ले-लेकर नाम
कृष्णका नाच-नाचकर मोर।
और मैं अभागिनी हर समय
भरे रहती हूँ दुखकी रोर॥
नित्य पीते अब भी मकरन्द
मधुप कोमल कलियोंके हाथ।
और मैं अपना प्रेम-पराग
लिये फिरती हूँ बनी अनाथ॥
मनाते हैं उत्सव, आनन्द,
चहककर डाल-डालपर विहग।
और मैं अपने ही घर-द्वार
मनसुखे! रह जाती हूँ सुलग॥
कर गयी है कैसी दुर्दशा–
विरह-सागरकी बाढ़ विशाल।
देख जा एक बार ही सही
मनसुखा भैयाके गोपाल॥

(५५)

रही है जबसे सिरपर नहीं
सखा प्यारे तेरेकी बाँह।
कसकती है काँटे-सी हाय!
कलेजे वंशीवटकी छाँह॥
अकेली जान मुझे असहाय
मनसुखे! कालिन्दीका नीर।
चुभोता है अन्तरमें अरे!
एक ही साथ सैकड़ों तीर॥
घुल गयी हैं पीड़ामें साँस
मित्र तेरेकी कर-कर याद।
बस गया प्राणोंमें मनसुखे!
श्यामका दुखता विरह-विषाद॥
देखती हूँ नित उनकी बाट
बिछाये पथमें व्याकुल नैन।
तरसते पल-पल आकुल श्रवण
पान करने मोहनके बैन॥
लूट मेरा तन-मन चितचोर
गया है ऐसा जादू डाल।
न पल कल लेने देता मुझे
मनसुखे! तेरा प्रिय गोपाल॥

(क्रमशः)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ईर्ष्याका भूत

[पिशुन-कर्म 'जहरकी पुड़िया' का घृणित धर्म]

(लेखक—श्रीहरिमोहनलालजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एल्० टी०)

उर्दूके एक शायरने कितनी सुन्दर बात बहुत सीधे-सादे शब्दोंमें कही है—

जोशे हमदर्दी नहीं जिसमें वह इन्सान नहीं।
ज़ाहिरा सूरते आदम है मगर जान नहीं॥

—स्व० मुंशी कालिकाप्रसाद श्रीवास्तव 'नदीम' (लेखकके पितामह)

अर्थात् जिसके हृदयमें सहानुभूतिका वेग नहीं, वह मनुष्यकी आकृतिमें दिखायी देनेपर भी निर्जीव है। यथार्थमें वह भूत है, जो नाना प्रकारके उपद्रव करके लोगोंको कष्ट पहुँचाता है।

'सहानुभूति'का अर्थ है 'दूसरेके दृष्टिकोण और उसकी परिस्थितियोंको समझना' तथा 'दूसरेके दुःखमें वैसे ही कष्टका अनुभव करना'। सहानुभूतिके अभावसे ही हृदयमें ईर्ष्याका जन्म होता है। ईर्ष्याका अर्थ है 'दूसरेको होनेवाले लाभसे दुःख पाना' अथवा 'किसीकी बढ़ती न देख सकना'। ईर्ष्या, जिसका एक नाम 'मत्सर' है, और जो मनुष्यके छः शत्रुओंमेंसे एक है, अपने आपमें एक भूत है, जो व्यक्तिपर बुरी तरह सवार हो जाता है। सहानुभूतिसे दूर रहकर निष्प्राण बननेवाला ईर्ष्यालु व्यक्ति उससे भी बड़ा भूत है, जो समाजको आक्रान्त करते हुए वातावरणको विषाक्त बनानेका दूषित प्रयास करता है।

जॉन स्टुअर्ट मिलने कहा है—'सभी भावावेगोंमें सबसे अधिक घृणास्पद और समाज-विरोधी भाव है, तो द्वेष।' किंतु शेरीडनके अनुसार 'मानव-हृदयमें कोई भी भाव इतनी मजबूतीसे जमा हुआ नहीं है, जितना द्वेष या डाह।' अभिप्राय यह है कि ईर्ष्याके आधिपत्यसे मनुष्य कुछ कठिनाईसे ही छुटकारा पा सकता है। उससे बचनेका एक ही उपाय है, ईर्ष्याके विरोधी तत्त्व 'सहानुभूति'को हृदयमें जगाना। सहानुभूति वह जादू है, जिससे विभिन्न मतभेद समाप्त हो जाते हैं।

किंतु महात्माओं-जैसी सम्पूर्ण सहानुभूति भी विरोधका सामना करती आयी है। सहानुभूतिकी उदारता यदि एक ओर आंशिक रूपमें हो और दूसरी ओर सहानुभूतिकी भावनाका नितान्त अभाव हो, तो संघर्षकी स्थिति आये बिना नहीं रहती। सहानुभूतिसे शून्य व्यक्तिका दृष्टिकोण सदैव संकीर्ण रहता है और वह सब समय स्वार्थपरतासे घिरा रहता है। स्वार्थान्ध होकर जब कोई व्यक्ति द्वेषसे भर जाता है तो वह दूसरेकी अच्छी-बुरी प्रत्येक बातपर खीज प्रकट किये बिना नहीं रहता।

द्वेष और वैमनस्यके लिये यह आवश्यक नहीं कि कोई कुछ दुःख पहुँचावे, तभी उससे वैरभाव माना जाय। ईर्ष्याकी कैकयी कृतघ्नतारूपी मन्थरा-सहचरीके बहकावेमें आकर अपने साथ निजत्वका भाव रखनेवाले या उपकार करनेवालेके भी बड़े-से-बड़े अनिष्टके लिये तत्पर हो जाती है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने ठीक ही कहा है—'तुम्हारी निन्दा वही करेगा, जिसकी तुमने भलाई की है'। ईर्ष्या करनेवाला किसीके द्वारा अपने प्रति किये गये उपकारोंपर बिल्कुल ध्यान नहीं देता—अपकारोंको भले ही बढ़ाकर सोचे।

किसी स्वार्थी और कृतघ्नी जीवको जब ईर्ष्याका भूत लग जाता है, उसे अपनी स्थितिपर संतोष नहीं रहता। भले ही कुछ निचली होनेपर भी उसकी अपनी स्थिति चाहे सुदृढ़ हो, तो भी वह उससे असंतोषका अनुभव करने लगता है। फलतः वह अपनेको नितान्त दुखी समझ बैठता है। अपने पासकी वस्तु उसे आनन्द नहीं देती। पड़ोसीकी मुर्गी उसे राजहंस-जैसी दिखायी देती है। दूसरेका वैभव देखकर वह अपना आनन्द आप खो बैठता है। अपने अभावको बहुत बढ़ाकर देखते हुए वह अपने आसपास जान-बूझकर दुःखका वातावरण बना लेता है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति अत्यन्त भयंकर होता है—अपने लिये और उस समाजके लिये, जिसमें वह जन्म पाता है। अपनी ही कल्पनासे निर्मित अभावका अहर्निश चिन्तन करते हुए वह उन्नतिसे निराश हो बैठता है और उन्नतिके लिये उद्यम भी छोड़ देता है। उसका एकमात्र उद्यम दूसरोंको हानि पहुँचानेका हो जाता है। विनाशमें लीन होकर वह सभीसे घृणा करने लगता है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

संसारमें पचास फीसदी लोग केवल इसीलिये दुखी हैं कि वे औरोंसे ईर्ष्या करते हैं, अर्थात् अपने आपसे असंतुष्ट हैं। अधिकतर यह ईर्ष्या अकारण होती है और इसका दंश प्रायः सभीको चुभता है। कोई भी व्यक्ति, चाहे जितना सद्गुणी क्यों न हो, यह गर्व नहीं कर सकता कि उससे कोई घृणा नहीं करता। काल्टनके अनुसार 'हजारमें एक व्यक्ति ही ऐसा होगा, जो हमारी विपत्तिपर सच्चे मनसे तरस खाये, शेष सभी सच्चे जीसे हमारी सफलतासे घृणा करेंगे।' किंतु हीरोडोटसने एक वीर पुरुषके रूपमें कहा है—'तरस खाये जानेसे डाह किया जाना अच्छा है।'

एक अंग्रेज विद्वान्ने 'ईर्ष्या'की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए यह धारणा प्रकट की है कि डाहके लिये कारण जुटानेका दोष सदैव उन व्यक्तियोंका है, जो सफलता प्राप्त करते हैं। इस विद्वान्के अनुसार 'ईर्ष्या वह मानसिक व्यथा है, जो सफल व्यक्ति अपने पड़ोसियोंको पहुँचाते हैं।' सैनेकाका कथन है—समूहकी आदत है कि वह सुप्रसिद्ध व्यक्तियोंपर भौंके, जिस प्रकार छोटे कुत्ते अपरिचितोंपर भौंका करते हैं।' जितना ही अधिक वैभव होगा, उतना ही अधिक डाह वह भड़कायेगा; परंतु वीर और भाग्यशाली ईर्ष्याको सह जाते हैं। सचमुच कितने ही लोगोंने द्वेष करनेवालोंसे वैभव पाया है। ईर्ष्यामें भरकर कोई किसीके पतनकी जितनी चाह करेगा, उतनी ही अधिक निराशा द्वेष रखनेवालेके पल्ले पड़ेगी; क्योंकि परमेश्वर जो केवल अच्छाईकी ओर ध्यान देता है, उस सफल व्यक्तिको और भी ऊँचा उठाना चाहेगा। ईर्ष्यायुक्त व्यक्ति परनिन्दापरायण हो जाता है। वह निन्दा करके दूसरोंको गिराकर उनके गौरवपूर्ण स्थानपर अधिकार करना चाहता है। जब रिश्तेदारी कायम हुई है, तो एक कहावतके अनुसार हम कह सकते हैं कि ईर्ष्या और आलस्य जब विवाह-सूत्रमें बँध गये, तो उन्होंने उत्सुकताको जन्म दिया, अर्थात् ईर्ष्यालु व्यक्तिकी क्षमता सो जाती है और चुगली खानेके लिये उत्सुकता या अधीरता उसमें जाग जाती है। सफल व्यक्तिके दोषोंकी खोज करने और उसकी बुराईका कोई भी अवसर हाथसे न जाने देनेकी उत्सुकता भी कितनी अनोखी है। किसीने कहा है—'ईर्ष्या प्रेमकी बहिन है, जिस प्रकार शैतान देवदूतोंका भाई।' इन दो जुड़वाँ बच्चोंमें ईर्ष्या प्रेमको नष्ट कर देती है।

एक अत्यन्त छोटा कीड़ा बढ़िया कपड़ेमें लगकर उसे चाट जाता है। उसी प्रकार ईर्ष्या उसी हृदयको जला-जलाकर खाक करती है, जिसमें वह जन्म पाती है। मत्सरका शिकार अवसर पाते ही आत्मप्रचारके साथ परनिन्दाका प्रकरण खोल देता है और प्रत्येक सम्भव उपायसे दूसरोंको गिरानेकी बातोंमें उलझ जाता है। कुण्ठा लेकर वह अपनी शक्ति और सामर्थ्यको आप ही कुण्ठित कर बैठता है। जो समय उसे अपने चरित्रको निर्मल बनाने और निजका विकास करनेमें लगाना चाहिये, उसे वह यों ही गँवा देता है। वह नहीं सोच पाता कि जिनसे उसे डाह है, उनका पतन हो सकता है तो उनके सद्गुणोंके ह्राससे। मूढ़ नर नहीं समझ पाता कि सच्चे-पूरे मानवका वह हृदय नहीं, जो यह कामना करे कि किसीके अनिष्टकी नींवपर मैं अपनी प्रभुताका प्रासाद निर्मित करूँ। दिनकरजीकी दृष्टिमें 'ईर्ष्यासे जला-भुना आदमी जहरकी एक चलती-फिरती गठरीके समान है, जो हर जगह वायुको दूषित करती फिरती है। उसकी हँसी मनुष्यकी नहीं, राक्षसकी हँसी होती है।' निन्दाके बाणोंसे दूसरोंको बेधकर वह केवल दैत्योंका आनन्द पा सकता है। ईर्ष्या जन्म पाती है हीनताकी भावनासे। जन्म या परिवार-सम्बन्धी कोई गुप्त रहस्य, गृह-कलह, निर्धनता, कोई शारीरिक हीनता, प्रेम-सम्बन्धमें विफलता आदि कारणोंसे व्यक्तियोंमें हीनताकी ग्रन्थि पड़ जाती है। हीनता लेकर ईर्ष्याको अपनानेवाला सदैव चिन्तित रहता है कि मैं तिरस्कृत या उपेक्षित क्यों हूँ, जबकि दूसरे आगे बढ़कर प्रमुख स्थानपर हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति अनुभव करता है कि उसमें किसी वस्तुकी कमी है, पर वह दूसरोंके पास है। वह नहीं समझ पाता कि उस वस्तुको कैसे प्राप्त करे। क्रोधमें भरकर वह उनसे जलने लगता है, जिन्हें वह मन-ही-मन अपनेसे श्रेष्ठ मानता है। एक अंग्रेज विद्वान्के अनुसार 'बुलबुल लज्जासे मर जाती है, यदि कोई दूसरी चिड़िया उससे अच्छा गाती है।'

नीशे नामक दार्शनिकने कहा है—'मनुष्यमें जो गुण महान् समझे जाते हैं, उन्हींके चलते लोग उससे जलते भी हैं।' क्षुद्र हृदय और संकीर्ण दृष्टिवाले ईर्ष्यालु व्यक्तियोंको जिन्होंने भले आदमियोंपर कीचड़ उछालनेका धंधा अपना रक्खा है, नीशेने 'बाजारकी मक्खियाँ' कहा है और उनके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भिनभिनानेकी चिन्ता न करते हुए उनसे दूर रहकर सद्गुणोंकी साधना करते रहनेकी सलाह दी है। पर जिन्हें समाजमें रहना है, वे ईर्ष्यालुके साथ चाहे जितनी उदारता बरतें, बदलेमें बुराई ही पा सकेंगे। चुप रहनेपर भी उनका कल्याण नहीं; क्योंकि तब तो ईर्ष्यालु और भी क्रुद्ध होंगे। आस्कर वाइल्डका परामर्श विचारणीय है कि अपने शत्रुओंको सदा क्षमा करते रहो; क्योंकि उन्हें इससे अधिक चिढ़ानेवाली बात दूसरी नहीं। जो लोग मीठी मारपर विश्वास न ला सकें, उनके लिये आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी सीख तथ्य-भरी है 'साधुसे साधु प्रकृतिवालेको क्रूर लोभियों और दुर्जनोंसे क्लेश पहुँचता है। अतः उनके प्रयत्नोंको विफल करने या भयसंचारद्वारा रोकनेकी आवश्यकतासे हम बच नहीं सकते।'

दो शब्द उन लोगोंसे भी जिनके स्वभावमें ईर्ष्या घुल-मिल गयी है। उनके अन्तरकी हीनता ही तो दूसरोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करती है। परमपिताने सबको समान शक्तियाँ दी हैं। जिनमें वे कुछ अधिक विकास देखते हैं, उनके पदचिह्नोंपर वे धैर्य और लगनके साथ बढ़ें और हरि-कृपापर विश्वास रक्खें, तो वे भी कुछ सफलता पा ही जायँगे। जिस अभावके कारण उनमें ईर्ष्या पनपी है, उसकी पूर्तिके लिये रचनात्मक उपायोंकी खोज करनेवाला मानसिक अनुशासन उनके लिये सर्वथा आवश्यक है। अपनी ईर्ष्याको स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धाकी ओर मोड़ रखनेके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील रहें। 'निन्दक नियरे राखिये' के अनुसार जब वे अपने वैरियोंका स्वभाव निर्मल कर सकते हैं, तो क्यों न शक्तियोंको निजके चरित्रकी निर्मलतामें लगावें। और फिर कहीं तो संतोष करना पड़ेगा। जिस वस्तुको वे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंमें बहुत बड़ी सफलता मान बैठे हैं, बहुत सम्भव है, वे उससे वैसे संतुष्ट न हों। कारण कि ईर्ष्याका कहीं अन्त नहीं; इस विशाल संसारमें एक-से-एक बड़े पड़े हैं और सच्चा बड़प्पन वही है, जहाँ समुचित उद्योगके बाद जो मिल सके उसीमें बड़ा संतोष है।

[लेखककी अप्रकाशित कृति 'महकते मोती' से]

गीत

(रचयिता—प्रो० श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण')

चुप चुप निठुर, परीक्षा कैसी !

कोई भाव नहीं उठ पाता,
आँख न कोई भर पाती है;
अगुरु धूमकी तेज गन्ध, पर
मूर्ति न तनिक सिहर पाती है;
क्षिप्र वेगकी शिक्षा कैसी !
चुप चुप निठुर, परीक्षा कैसी !

विषम परिस्थितियोंकी छाया,
शोक श्लोकमें बदल न पाता;
लहरें नहीं पकड़में आतीं,
हृदय-समुन्दर है पछताता;
मोह-मुक्तिकी दीक्षा कैसी !
चुप चुप निठुर, परीक्षा कैसी !

दुर्बल साँस आस है थोड़ी,
छलना सूखी डाल हिलाती;
नभमें कुहरा भरा हुआ है,
कृपा-कोरकी घटा न छाती;
अनुपम त्याग-तितिक्षा कैसी !
चुप चुप निठुर, परीक्षा कैसी !

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका वयो-विचार-विमर्श

(लेखक—श्रीचन्द्रकान्तजी बाली)

परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी जीवन-लीला अनिर्वचनीय है। साक्षात् शारदाजी उनका लीला-यशोगान गा रही हैं; इससे न तो भगवती शारदाकी आत्मसंतुष्टि हुई है, न लीलागाथाकी इतिश्री हुई है। परब्रह्म स्वयं अनन्त हैं; उनकी अहैतुकी कृपा अनन्त है; उस कृपाके वशीभूत होकर परब्रह्मके अंगीकृत श्रीविग्रह अनन्त हैं[1] और एक-एक श्रीविग्रहकी लीलागाथा अनन्त है।

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी पावन एवं मधुर जीवनलीला भक्तोंके लिये श्रद्धाप्रेरक, आनन्दोद्बोधक एवं मनो-मोदकारक भले ही हो, पर तर्कानुजीवी कठोरकर्मा इतिहासकारोंके लिये वह आकर्षण-विहीन ही है—यह देखकर हृदय खिन्न होता है। इसमें इतिहासकारोंपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। इतिहासकारके लिये गोपकुमार श्रीकृष्णने मथुरानरेश कंसको मारा—इस घटनाका तबतक कुछ भी मूल्य नहीं, जबतक उसके साथ तिथिका उल्लेख न हो। एक तिथियुक्त क्षुद्र-से-क्षुद्र घटना भी इतिहासकारके लिये आदेय हो जाती है, जब कि तिथिविहीन महान्-से-महान् घटकको वह हठात् उपेक्षित करके इतिहास-कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। इतिहासकारकी इस कठोर एवं आवश्यक प्रवृत्तिको संदर्भमें रखकर आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णमहाराजकी वयःपर विचार-विमर्श उपस्थित करते हैं। इसे परब्रह्म श्रीकृष्णके लीलासिन्धुको पार पानेका अहंकार न समझ लिया जाय, बल्कि भगवल्लीलामें अपने जीवनके कतिपय क्षणोंके सर्वात्मना समर्पणका यह लघुतम प्रयास मात्र है—यह विनम्र प्रार्थना है।

भविष्यपुराणमें लिखा है— भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने १३५ वर्ष लीलाका चमत्कार दिखाकर श्रीविग्रहका परित्याग कर दिया[2]। श्रीमद्भागवत महापुराणमें यह वयोमान १२५ वर्ष लिखा है[3]। दो पुराणग्रन्थोंकी विसंगत उपलब्धियोंमें १० वर्षीय अन्तरालको विष्णुधर्मोत्तरपुराणके संदर्भमें सुगमतापूर्वक सुलझाया जा सकता है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका वयोमान-निर्धारण महाभारतकाण्डके तिथिनिर्धारणपर निर्भर करता है। वराहमिहिरके वचनोंका मनमाना अन्वय लगाकर इतिहासकारोंने महाभारतकाल २४४८ ईसापूर्वमें परिकल्पित कर रक्खा है। इधर प्रख्यात इतिहासकार कल्हणने कलिसंवत् ६५३ में महाभारत समरकी बात उठायी है, जो तिथिविज्ञानके अनुसार इतिहासकारोंकी स्थापनाकी पुष्टि करती है। इतिहासकारोंकी उक्त स्थापना न केवल पौराणिक संदर्भोंके विपरीत[6] है,

---

१. बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
(गीता ४। ५)

२. पञ्चत्रिंशदुत्तरं च शतं वर्षं च भूतले।
उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागतः॥
(भविष्यपुराण)

३. यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो॥
(भागवत)

४. आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षट्-द्विक-पञ्च-द्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च॥
(राज० तरं० १। ५६)

अर्थात् २५२६—७८=२४४८ ईसापूर्वमें महाभारत संग्राम हुआ।

५. [क] शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः॥
(राज० १। ५१)

[ख] प्रयाते त्र्यधिकेऽप्यर्धं समाः षट्कशते कलेः।
काश्मीरेष्वास्त गोनन्दः पार्थानां सेवया नृपः॥
(राज० ८। ३४०७)

अर्थात् ३१०१ ईसापूर्वसे—६३५ घटानेपर= २४४८ ईसापूर्व पूर्ववत् सिद्ध हुआ।

६. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत॥
(वायुपुराण ९९। ४२८)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णका अन्तर्धान ३१०१ ईसापूर्वमें हुआ—यह पुराणसम्मत है और तिथिविज्ञानपर पूर्णतया आधृत है। ३१०१ ई० पूर्व=००-कलिपूर्व।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बल्कि वराहमिहिर एवं कल्हणकी काल-गणनासे भी समन्वय खो चुकी है।[7]

वास्तवमें महाभारतकाण्ड ३१४८ ईसापूर्व [४७ कलिपूर्व] में घटा था। ३१४८ ईसापूर्व तथा २४४८ ईसापूर्वमें ७०० वर्षोंका अन्तराल है। इतिहासमें व्याप्त इस ७०० वर्षीय भूलका जबतक सम्मार्जन न किया जायगा, तबतक इतिहास-मार्ग प्रशस्त न हो सकेगा[8]। इतिहासमें ७०० वर्षीय भूलकी उपज भी अकारण नहीं है। भारतवर्षमें नन्दवंशने कितने वर्ष राज्य किया? जबतक इस तथ्यका अनुसंधान न किया जायगा, तबतक सभी प्रकारकी भ्रान्तियाँ एवं विसंगतियाँ उभरी-उभरी ही रहेंगी। महाकवि दण्डीने नन्दका शासनकाल ८८ वर्ष लिखा है।[9] पुराण-ग्रन्थोंमें यह शासनकाल १०० वर्ष ही लिखा है।[10] वास्तवमें ८८ वर्ष अथवा १०० वर्ष नन्दका शासनकाल है, नन्दवंशका नहीं। नन्दवंशने पूरे ८०० वर्ष भारतवर्षमें शासन किया था। भारतके प्रख्यात ग्रन्थ सुमतितन्त्रमें नन्दवंशके ८०० वर्षीय शासनकालका निर्देश निर्भ्रान्त शब्दोंमें अङ्कित है।[11] इतिहासकार भ्रमवश एक या दो नन्दोंके शासनका कालमान १०० वर्ष ही कूतते रहे और नन्दवंशको दृष्टि-ओझल रखकर ८००-१००=७०० वर्षोंको बराबर चूकते रहे। यदि आज नन्दवंशके शासनकालका नूतन अनुसंधान किया जाय और १०० वर्षीय नन्द-शासनको ८०० वर्षीय नन्दवंश-शासनमें परिणत किया जाय तो महाभारतसे लेकर अद्यावधि इतिहासका तिथिक्रम ठीक हो जाय। सो, जब हम इतिहासकारोंकी स्थापना—२४४८ ईसापूर्वमें महाभारतकाण्ड हुआ—में ७०० वर्षीय भूलका सम्मार्जन करते हैं तो २४४८+७००=३१४८ ईसापूर्वमें महाभारतकाण्डकी सम्भावनापर स्थिर हो जाते हैं।

श्रीकृष्णजन्म, महाभारतसंग्रामकाल

संग्रामकालमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज केवल ८८ वर्ष ४ मासके युवक थे। वयोमानमें महाराजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, सुयोधन आदि महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजीसे ज्येष्ठ थे; व्यास, द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह प्रभृति उनसे वृद्ध माने जाते थे। यद्यपि उनकी यह अष्टाशीति [८८] वयोमात्रा साक्षात् किसी पुराणग्रन्थमें वर्णित नहीं है; तथापि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी परम्परागत जन्मकुण्डली—जो गर्गमहाराज-जैसे ज्योतिर्विज्ञर्षिद्वारा प्रणीत है और ज्योतिर्विद्-समाजद्वारा सुरक्षित है—एवं महाभारतकालीन ग्रहस्थितिके[12]

---

७. द्रष्टव्य—कल्हणकृत कालगणना (नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष २८ अंक १-२ वर्ष २०२० विक्रमी।)

८. जैन-समाज महावीरका समय ५२७ ईसापूर्व मानता है; पुराण-मतानुसार, राजतरङ्गिणीके कालक्रमानुसार एवं स्वयं जैन-ग्रन्थोंके संदर्भानुसार महावीर स्वामीका समय १२२७ ईसापूर्व सिद्ध होता है। इसमें भी ७०० वर्षीय च्युतिपर विचार करनेकी आवश्यकता है। ५२७+७००=१२२७ ईसापूर्व।

९. एष खल्विदानीम् अष्टाशीतिम् अद्वानतीत्य निष्ठिते महापद्मे तत्पुत्रानष्टौ⋯ ⋯दशभिर्वत्सरैकैकमुद्धृत्यापकोपितेन मनस्विना चाणक्येन मौर्यचन्द्रगुप्तः प्रतिष्ठापितः। (पृष्ठ १८३)

१०. भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति।—अग्निपुराण

११. [क] युधिष्ठिरो महाराजो दुर्योधनस्तथापि वा।
उभौ राजौ सहस्रे द्वे वर्षस्तु सम्प्रवर्तति॥
नन्दराज्यं शताष्टं वा चन्द्रगुप्तस्ततो परम्।
राज्यं करोति तेनापि द्वात्रिंशच्चाधिकं शतम्॥
राजा शूद्रकदेवश्च वर्षसप्ताब्धि चाश्विनौ।
शकराजा ततो पश्चाद् वसु-रन्ध्र-कृतं तथा॥
(सुमतितन्त्र)

[ख] इन श्लोकोंमें आर्षसंस्कृत है।

[ग] सुमतितन्त्रकी दो प्रतियाँ वर्तमान हैं—१ प्रति ब्रिटिश म्यूजियममें सुरक्षित है और दूसरी प्रति नेपालस्थ विद्वद्वर पं० हेमराज शर्माके पास है। इन श्लोकोंको प्रचारित करनेका श्रेय श्रीमद्भगवद्दत्तजीको है [भारतवर्षका बृहद् इतिहास, भाग १, पृष्ठ १६६]

१२. श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति॥ १२॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति॥ १३॥
मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते॥ १४॥
शुक्रः प्रौष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते॥ १५॥
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषो ग्रहः॥ १७॥
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः॥ १८॥
संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलिताविभौ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ॥ २७॥
(भीष्मपर्व, अध्याय ३)

——भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, पृष्ठ १७० हिन्दी संस्करण। यह कुण्डली उसी उपलब्धिके अनुसार कल्पित की गयी है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

तुलनात्मक अध्ययनसे नितरां स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है। यथा—

श्रीकृष्णजन्माङ्गम्

महाभारत-कुण्डली

इन दो कुण्डलियोंमेंसे शनि, गुरु तथा राहुकी समान-परिणाम-प्रसूत करनेवाली गणनाद्वारा अष्टाशीति [८८] वर्षीय अन्तराल कालकी कठोर परीक्षा की जा सकती है।

शनि—शनिदेव एक राशिमें ३० मास विश्राम करते हैं और ३० वर्षोंमें द्वादशराशीय अपना भगण समाप्त करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जन्माङ्गमें शनिदेव स्वोच्चराशि तुलामें वर्तमान हैं। महाभारतकालमें भी वह तुला राशिमें हैं। अतः ३०×३=९० वर्षोंमें शनिदेव तुलासे चलकर तुलामें जा पहुँचे हैं। यहाँ शंका होनी स्वाभाविक है कि गीता-गायनकालमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र अपनी ८७॥—९० वयके किस वर्षमें थे ? इसका उत्तर राहुगति एवं गुरुगतिसे मिल जायगा।

राहु—यह ग्रह सदा वक्रगतिसे चलता है और एक राशिमें १८ मास विश्राम करके १८ वर्षोंमें अपना भगण समाप्त करता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मकुण्डलीमें राहु मीन राशिमें हैं और महाभारतकालमें वृष राशिमें हैं। राहुको वृषसे वक्र चलकर मीनमें पहुँचनेके लिये २ वर्ष अभी शेष हैं। अतः १८×५=९० वर्षमेंसे २ गये, शेष ८८ रहे। राहुके अंशांशकी कल्पनामें २ वर्षका ही संशोधन होता है।

गुरु—गुरुदेव वक्री-मार्गीके वैषम्यका समाधान स्वयं करते-करते १२ वर्षोंमें अपना भगण समाप्त करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जन्माङ्गमें गुरु कर्क राशिमें हैं और उच्चांशमें हैं। महाभारतकालमें गुरुदेव तुला राशिमें थे। अतः १२×७=८४ वर्षोंमें गुरुदेव कर्कसे मिथुनतक पहुँच पाये एवं कर्क-सिंह-कन्या-तुला राशियोंमें ४ वर्ष व्यतीत कर गये। ८४+४=८८ वर्ष इस प्रकारसे फलीभूत होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका जन्म भाद्रपद कृष्णाष्टमी-के दिन माना जाता है। महाभारत-संग्राम [कुण्डलीके अनुसार] मार्गशीर्षमें हुआ था।[13] अतः सूर्यगतिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण महाभारतकालतक ८८ वर्ष ४ मासके थे।

मास-गणनाका परित्याग भी कर दिया जाय तो ३१४७+८८=३२३५ ईसापूर्व, तदनुसार ४६+८८=१३४ कलिपूर्वमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने अवतार लिया था—इसमें कोई विकल्प नहीं।[14]

महाभारत-पश्चाद्वर्ती द्वापरयुगीन इतिहास

महाभारतकाण्डके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर सिंहासना-सीन हुए और धर्मपूर्वक उन्होंने शासन किया। उनका पूरा तिथिक्रम इस प्रकारसे है—

[१] महाराज युधिष्ठिर १५ वर्षतक अपने चाचा धृतराष्ट्रसे पूछ-पूछकर राज्य चलाते रहे। अर्थात् ३१४८—१५=३१३३ ईसापूर्व तक।[15] इसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र भीमके व्यंग्य वचनोंसे आहत होकर वन-प्रस्थान कर गये।[16]

---

१३. मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। (गीता)

१४. गणनाको सरल रखनेके लिये हमने ३१४८ ई० पू० को ३१४७ ई० पू० लिखा है। वैसे ३१४८+८८=३२३६ ईसापूर्व=१३५ कलिपूर्व जन्मकाल यथार्थ है।

१५. पाण्डवाः सर्वकार्याणि सम्पृच्छन्ति स्म तं नृपम्।
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दशपञ्चकम्॥
(आश्रमपर्व २। ६)

१६. ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः।
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः॥
(आश्रमपर्व ३। ६)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

[२] पाण्डवनरेशने २१ वर्ष स्वायत्त शासन किया। अपने चाचाके प्रस्थानके पश्चात् पाण्डव स्वयं शासन चलाते रहे। अर्थात् ३१३३–२१=३११२ ईसापूर्वतक।

[३] १५+२१=३६वें वर्ष महाराज युधिष्ठिरको विपरीत लक्षण नजर आने लगे। विपरीत निमित्तसे तात्पर्य भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रह-परित्यागसे पूर्व अनिष्टसूचक अपशकुनोंसे है।[१७] वही हुआ। भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धानके पश्चात् पाण्डव अभिमन्युपुत्र परीक्षित्को अभिषिक्त कर हिमालय प्रस्थान कर गये। अर्थात् ३११२–१=३१११ ईसापूर्वतक।

[४] अभिमन्युपुत्र परीक्षित्ने ६० वर्ष राज्य किया। १० वर्ष कलिपूर्व एवं ५० कलियुगतक।[१८] अर्थात् ३१११–६०=३०५१ ईसापूर्वतक।

इस तिथिक्रमके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका अन्तर्धान ३१११ ईसापूर्व=१० कलिपूर्व प्रकट होता है। इस तिथिक्रमके अनुसार श्रीमद्भागवतवर्णित श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका वयोमान १२५ ही सिद्ध होता है।[१९] अतः ३१११+१२५=३२३६ ईसापूर्वमें भगवान्ने अवतार धारण किया—यही सुविचारित निष्कर्ष है।

१० वर्षोंका समाधान

भविष्यपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी आयुष्य १३५ वर्ष अंकित है। श्रीमद्भागवत-पुराणके अनुसार वह कालमान १२५ है। संयोगकी बात है, दोनों पक्षोंके अनुसार जन्मतिथिमें कोई विसंवाद नहीं; यथा—

भविष्यपुराण—अन्तर्धान-तिथि ३१०१ ईसापूर्व; जन्म+१३५=३२३६ ईसापूर्व; भागवतपुराण—अन्तर्धान-तिथि ३१११ ईसापूर्व; जन्म+१२५=३२३६ ईसापूर्व।

निश्चयपूर्वक आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका प्राकट्य १३५ कलिपूर्व=३२३६ ईसापूर्व ही है। अलबत्ता अन्तर्धानके विषयमें विसंवाद है—१० कलिपूर्व अन्तर्धान हुए या ००-कलिपूर्व? हम इसके समाधानमें दो तथ्य उपस्थित करते हैं; यथा—

(१) विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें एक प्रसंग आया है।[२०] श्रीकृष्णपौत्र वज्रने मार्कण्डेयजीसे पूछा कि 'कलियुगसे [पूर्व] १० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब कलियुगमें मैं कितना समय और शासन करूँगा एवं परीक्षित् कितने समयतक और शासन करेगा?' इसके समाधानमें मार्कण्डेयजीने कहा—'आजसे पचास वर्ष पश्चात् राजा परीक्षित् दिवंगत होगा और तभी तेरे पुत्र 'अचल' का भी अभिषेक होगा।'

मूलपाठमें 'कलियुगात्' इस प्रकार पञ्चम्यन्त प्रयोग है। जो समय चल रहा है, उसके लिये सप्तम्यन्त प्रयोग होता है।[२१] पूर्व या प्राक् आदिके लिये पञ्चमीका ही विधान है।[२२] यह संवाद ठीक कलियुगारम्भ वर्षका है। अर्थात् ००-कलिवर्षमें खड़े होकर वज्रने प्रश्न किया और मार्कण्डेयने उत्तर दिया। कलियुगसे १० वर्ष पूर्व वज्रको शासन करते हुए तभी माना जा सकता है, जब श्रीकृष्णका अन्तर्धान

---

१७. षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥
(मौसलपर्व २। २)

१८. [क] विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः।
षष्टिवर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति॥
(सौप्तिकपर्व १६। १४)

[ख] प्रजा इवात्मज पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन्॥
(आदिपर्व ४९। १७)

१९. द्रष्टव्य टिप्पणी संख्या—३

२०. संवत्सराणां दशकं तथा कलियुगाद् [प्राग्] गतम्॥ ५॥
वज्र उवाच—
कियत्कालपरीमाणं मया शास्या वसुंधरा।
परीक्षिता च धर्मज्ञ तन्मे ब्रूहि भृगूत्तम॥
मार्कण्डेय उवाच—
अद्यप्रभृति राजेन्द्र समाः पञ्चाशके गते॥ १०॥
परीक्षिति महाराजे दिवं प्राप्ते कुरूद्वहे।
मथुरायां तथा भावी तव पुत्रोऽचलो नृपः॥ १३॥

२१. यथा—रस-रस-व्योम-बाणमिते कलौ युगे' इत्यादि। समा-पञ्चाशके गते।

२२. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।
(अष्टाध्यायी २। ३। २९)
इस प्रकार इनके अर्थमें भी पञ्चमीका प्रयोग होता है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

३१११ ईसापूर्वमें माना जाय। यदि भगवान्का अन्तर्धान ३१०१ ईसापूर्व=०० कलिपूर्वमें[२३] मान लें तो महाभारत-कालमें तथा श्रीकृष्ण-प्राकट्यकालमें १०-१० वर्षकी क्षति मानकर गणना करनी पड़ेगी, जिससे अन्य अनेक प्रश्नचिह्न खड़े हो जायँगे। अतः भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका अन्तर्धान १० कलिपूर्व=३१११ ईसापूर्वमें मानना ही श्रेयस्कर है।

(२) पुराणग्रन्थोंमें यथापाठ यत्र-तत्र कालगणनाका निर्देश है, वह सब सप्तर्षि-संवत्के अनुसार है। सप्तर्षि-संवत्-पर हम सविस्तर अन्यत्र लिख रहे हैं।[२४] सप्तर्षि-संवत् एक दिव्यगणना है। उसके दिन, मास, पक्ष, वर्ष एवं कल्पादि सब दिव्य-गणना-विधानके अनुसार ग्राह्य होते हैं।[२५]

सामान्य नियमानुसार १८ सौ वर्षोंका एक दिव्य दिवस होता है। इस नियमानुसार ९ सौर वर्षका दिवस और ९ सौर वर्षकी रात्रि मानी जायगी। आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र महाराजने कलियुगसे एक दिव्य दिवसपूर्व सायंकाल=सौर मानानुसार १० वर्ष पूर्व अपनी लीलाका संवरण कर लिया तथा मानवीचरित्रका अन्तिम पटाक्षेप कर दिया।

२३. द्रष्टव्य टिप्पणी संख्या—२ तथा ६।

२४. प्रकाश्यमान ग्रन्थ भारतीय संवत्।

२५. त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः॥ वायुपुराण५७।१७

षष्टिर्दैवतयुगानां चैकसप्ततिरेव च।—

त्रिंशच्चान्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः॥ वायुपुराण ९९।४२० पाठान्तर

सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।

सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥ ९९।४१९

सप्तर्षीणां युगं ह्येतद् दिव्यया संख्यया स्मृतम्।

सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्नाश्चैव सप्तभिः॥

तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः। ९९।४२० पाठान्तर

सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि।

ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि॥ ९९।४२१

तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः।

नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्॥ ९९।४२२

स्पष्ट है, जबसे सप्तर्षिकालमानका अन्तर्भाव हुआ है, जबसे दिव्यगणनाका लोप हुआ है, तबसे भगवान् श्रीकृष्णके कालमानमें १० वर्षोंका विसंवाद उठ खड़ा है। वायुपुराणके ९९ अध्यायके ४२८ वें श्लोकके अनुसार जिस दिन भगवान् अन्तर्धान हुए, उसी दिन कलियुगका आरम्भ हुआ। दिव्य कालगणनाकी उपेक्षा करनेवाली प्रतिज्ञा 'एक दिन' का अर्थ ००—कलिपूर्व=३१०१ ईसापूर्व ही लगायेगी, इससे भिन्न नहीं; दिव्य कालगणनाके संदर्भमें रखकर निर्णय लेनेवाली प्रतिभा दिव्यदिवस [१८ सौर वर्ष] के अर्ध कालमानके अनुसार १०=कलिपूर्व=३१११ ईसापूर्व ही अर्थ लगायेगी। अतः भागवतपुराणमें तथा भविष्यपुराणमें आगत श्रीकृष्णचन्द्रवयोमात्रामें १० वर्षकी घटा-बढ़ीका रहस्य यही है।

२० अगस्त १९६५ में होनेवाली जन्माष्टमीके पुण्यपर्व-पर आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका ५२०१ वाँ प्राकट्य-महोत्सव मनाया जायगा।[२६]

सुविचारित निष्कर्ष—

१. महाभारतकाण्ड ३१४८ ईसापूर्वमें ही घटित मानना चाहिये। यदि इसमें १० वर्षकी क्षति उठाकर ३१३८ ईसापूर्व मान लिया गया तो भगवान् श्रीकृष्णके जन्मकाल तथा महाभारतकाण्डकालका अवधान ८८ वर्षोंसे बढ़कर ९८ वर्ष हो जायगा, जो गुरु-राहु-शनिके कालमानके लिये असह्य हो जायगा।

२. महाभारतकालीन इतिहास तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके संदर्भमें भगवान् श्रीकृष्णका अन्तर्धान ३१११ ईसापूर्वमें ही सम्भव है; और तभी श्रीमद्भागवतका संदर्भ भी चरितार्थ माना जा सकता है। तीन-तीन ग्रन्थसंदर्भोंके समवेत फलितार्थोंकी उपेक्षा कर सकना आसान न होगा।

३. भागवतपुराण तथा भविष्यपुराणका अन्तर्धान विषयक तिथिमान-वैषम्य सप्तर्षि-संवत्के अन्तर्भावसे हुआ है। तर्कसंगत एवं संदर्भसिद्ध भगवान्का अन्तर्धान-वर्ष १० कलिपूर्व एवं अपनी आयुष्य १२५ वाँ वर्ष है।

ये पंक्तियाँ केवल भावोद्रेकके कारण प्रकाशमें नहीं

२६. [क] ३२३६+१९६५=५२०१ः ईसवीय गणनानुसार।

[ख] १३५+५०६६=५२०१ः कलिगणनानुसार।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

[२] पाण्डवनरेशने २१ वर्ष स्वायत्त शासन किया। अपने चाचाके प्रस्थानके पश्चात् पाण्डव स्वयं शासन चलाते रहे। अर्थात् ३१३३–२१=३११२ ईसापूर्वतक।

[३] १५+२१=३६वें वर्ष महाराज युधिष्ठिरको विपरीत लक्षण नजर आने लगे। विपरीत निमित्तसे तात्पर्य भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रह-परित्यागसे पूर्व अनिष्टसूचक अपशकुनोंसे है।[17] वही हुआ। भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धानके पश्चात् पाण्डव अभिमन्युपुत्र परीक्षित्को अभिषिक्त कर हिमालय प्रस्थान कर गये। अर्थात् ३११२–१=३१११ ईसापूर्वतक।

[४] अभिमन्युपुत्र परीक्षित्ने ६० वर्ष राज्य किया। १० वर्ष कलिपूर्व एवं ५० कलियुगतक।[18] अर्थात् ३१११–६०=३०५१ ईसापूर्वतक।

इस तिथिक्रमके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका अन्तर्धान ३१११ ईसापूर्व=१० कलिपूर्व प्रकट होता है। इस तिथिक्रमके अनुसार श्रीमद्भागवतवर्णित श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका वयोमान १२५ ही सिद्ध होता है।[19] अतः ३१११+१२५=३२३६ ईसापूर्वमें भगवान्ने अवतार धारण किया—यही सुविचारित निष्कर्ष है।

१० वर्षोंका समाधान

भविष्यपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी आयुष्य १३५ वर्ष अंकित है। श्रीमद्भागवत-पुराणके अनुसार वह कालमान १२५ है। संयोगकी बात है; दोनों पक्षोंके अनुसार जन्मतिथिमें कोई विसंवाद नहीं; यथा—

भविष्यपुराण—अन्तर्धान-तिथि ३१०१ ईसापूर्व; जन्म+१३५=३२३६ ईसापूर्व; भागवतपुराण—अन्तर्धान-तिथि ३१११ ईसापूर्व; जन्म+१२५=३२३६ ईसापूर्व।

निश्चयपूर्वक आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका प्राकट्य १३५ कलिपूर्व=३२३६ ईसापूर्व ही है। अलबत्ता अन्तर्धानके विषयमें विसंवाद है—१० कलिपूर्व अन्तर्धान हुए या ००-कलिपूर्व? हम इसके समाधानमें दो तथ्य उपस्थित करते हैं; यथा—

(१) विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें एक प्रसंग आया है।[20] श्रीकृष्णपौत्र वज्रने मार्कण्डेयजीसे पूछा कि 'कलियुगसे [पूर्व] १० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब कलियुगमें मैं कितना समय और शासन करूँगा एवं परीक्षित् कितने समयतक और शासन करेगा?' इसके समाधानमें मार्कण्डेयजीने कहा—'आजसे पचास वर्ष पश्चात् राजा परीक्षित् दिवंगत होगा और तभी तेरे पुत्र 'अचल' का भी अभिषेक होगा।'

मूलपाठमें 'कलियुगात्' इस प्रकार पञ्चम्यन्त प्रयोग है। जो समय चल रहा है, उसके लिये सप्तम्यन्त प्रयोग होता है।[21] पूर्व या प्राक् आदिके लिये पञ्चमीका ही विधान है।[22] यह संवाद ठीक कलियुगारम्भ वर्षका है। अर्थात् ००-कलिवर्षमें खड़े होकर वज्रने प्रश्न किया और मार्कण्डेयने उत्तर दिया। कलियुगसे १० वर्ष पूर्व वज्रको शासन करते हुए तभी माना जा सकता है, जब श्रीकृष्णका अन्तर्धान

---

१७. षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥
(मौसलपर्व २ । २)

१८. [क] विदित्वा परनाम्नाणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः।
षष्टिवर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति॥
(सौप्तिकपर्व १६ । १४)

[ख] प्रजा इवाराव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन्॥
(आदिपर्व ४९ । १७)

१९. द्रष्टव्य टिप्पणी संख्या—३

२०. संवत्सराणां दशकं तथा कलियुगाद् [प्राग्] गतम्॥ ५॥
वज्र उवाच—
कियत्कालपरीवाणं मया शास्या वसुंधरा।
परीक्षिता च धर्मज्ञ तन्मे ब्रूहि भृगूत्तम॥
मार्कण्डेय उवाच—
अद्यप्रभृति राजेन्द्र समाः पञ्चाशके गते॥ १०॥
परीक्षिति महाराजे दिवं प्राप्ते कुरूद्वहे।
मथुरायां तथा भावी तव पुत्रोऽचलो नृपः॥ १३॥

२१. यथा—रस-रस-व्योम-बाणमिते कलौ युगे··· इत्यादि। समा- पञ्चाशके गते।

२२. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।
(अष्टाध्यायी २ । ३ । २९)
इस प्रकार इनके अर्थमें भी पञ्चमीका प्रयोग होता है।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

३१११ ईसापूर्वमें माना जाय। यदि भगवान्का अन्तर्धान ३१०१ ईसापूर्व=०० कलिपूर्वमें[२३] मान लें तो महाभारत-कालमें तथा श्रीकृष्ण-प्राकट्यकालमें १०-१० वर्षकी क्षति मानकर गणना करनी पड़ेगी, जिससे अन्य अनेक प्रश्नचिह्न खड़े हो जायँगे। अतः भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका अन्तर्धान १० कलिपूर्व=३१११ ईसापूर्वमें मानना ही श्रेयस्कर है।

(२) पुराणग्रन्थोंमें यथापाठ यत्र-तत्र कालगणनाका निर्देश है, वह सब सप्तर्षि-संवत्के अनुसार है। सप्तर्षि-संवत्-पर हम सविस्तर अन्यत्र लिख रहे हैं।[२४] सप्तर्षि-संवत् एक दिव्यगणना है। उसके दिन, मास, पक्ष, वर्ष एवं कल्पादि सब दिव्य-गणना-विधानके अनुसार ग्राह्य होते हैं।[२५]

सामान्य नियमानुसार १८ सौ वर्षोंका एक दिव्य दिवस होता है। इस नियमानुसार ९ सौर वर्षका दिवस और ९ सौर वर्षकी रात्रि मानी जायगी। आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र महाराजने कलियुगसे एक दिव्य दिवसपूर्व सायंकाल=सौर मानानुसार १० वर्ष पूर्व अपनी लीलाका संवरण कर लिया तथा मानवीचरित्रका अन्तिम पटाक्षेप कर दिया।

२३. द्रष्टव्य टिप्पणी संख्या–२ तथा ६।

२४. प्रकाश्यमान ग्रन्थ भारतीय संवत्।

२५. त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः॥ वायुपुराण५७।१७

षष्टिर्दैवतयुगानां चैकसप्ततिरेव च।—

त्रिंशच्चन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः॥ वायुपुराण ९९।४२० पाठान्तर

सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।

सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥ ९९।४१९

सप्तर्षीणां युगं ह्येतद् दिव्यया संख्यया स्मृतम्।

सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्नाश्चैव सप्तभिः॥

तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः। ९९।४२० पाठान्तर

सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि।

ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि॥ ९९।४२१

तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः।

नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्॥ ९९।४२२

स्पष्ट है, जबसे सप्तर्षिकालमानका अन्तर्लीन हुआ है, जबसे दिव्यगणनाका लोप हुआ है, तबसे भगवान् श्रीकृष्णके कालमानमें १० वर्षोंका विसंवाद उठ खड़ा है। वायुपुराणके ९९ अध्यायके ४२८ वें श्लोकके अनुसार जिस दिन भगवान् अन्तर्धान हुए, उसी दिन कलियुगका आरम्भ हुआ। दिव्य कालगणनाकी उपेक्षा करनेवाली प्रतिज्ञा 'एक दिन' का अर्थ ००—कलिपूर्व=३१०१ ईसापूर्व ही लगायेगी, इससे भिन्न नहीं; दिव्य कालगणनाको संदर्भमें रखकर निर्णय लेनेवाली प्रतिभा दिव्यदिवस [१८ सौर वर्ष] के अर्ध कालमानके अनुसार १०=कलिपूर्व=३१११ ईसापूर्व ही अर्थ लगायेगी। अतः भागवतपुराणमें तथा भविष्यपुराणमें आगत श्रीकृष्णचन्द्रवयोमानोंमें १० वर्षकी घटा-बढ़ीका रहस्य यही है।

२० अगस्त १९६५ में होनेवाली जन्माष्टमीके पुण्यपर्व-पर आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका ५२०१ वाँ प्राकट्य-महोत्सव मनाया जायगा।[२६]

सुविचारित निष्कर्ष—

१. महाभारतकाण्ड ३१४८ ईसापूर्वमें ही घटित मानना चाहिये। यदि इसमें १० वर्षकी क्षति उठाकर ३१३८ ईसापूर्व मान लिया गया तो भगवान् श्रीकृष्णके जन्मकाल तथा महाभारतकाण्डकालका अवधान ८८ वर्षोंसे बढ़कर ९८ वर्ष हो जायगा, जो गुरु-राहु-शनिके कालमानके लिये असह्य हो जायगा।

२. महाभारतकालीन इतिहास तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके संदर्भमें भगवान् श्रीकृष्णका अन्तर्धान ३१११ ईसापूर्वमें ही सम्भव है; और तभी श्रीमद्भागवतका संदर्भ भी चरितार्थ माना जा सकता है। तीन-तीन ग्रन्थसंदर्भोंके समवेत फलितार्थोंकी उपेक्षा कर सकना आसान न होगा।

३. भागवतपुराण तथा भविष्यपुराणका अन्तर्धान विषयक तिथिमान-वैषम्य सप्तर्षि-संवत्के अन्तर्भावसे हुआ है। तर्कसंगत एवं संदर्भसिद्ध भगवान्का अन्तर्धान-वर्ष १० कलिपूर्व एवं अपनी आयुष्य १२५ वाँ वर्ष है।

ये पंक्तियाँ केवल भावोद्रेकके कारण प्रकाशमें नहीं

२६. [क] ३२३६+१९६५=५२०१: ईसवीय गणनानुसार।

[ख] १३५+५०६६=५२०१: कलिगणनानुसार।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आर्षी; न इनके पीछे मात्र श्रद्धाका बल निहित है। भावना एवं श्रद्धा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके प्रति हमें अधिक-से-अधिक विनम्र ही बना सकती हैं। इन पंक्तियोंमें उपस्थित पौराणिक संदर्भोंका जो समुचित समन्वय किया गया है, उसके पीछे अभिनव अनुसंधानकी भावना निहित है। अभीष्ट अर्थ-संदोहनके लिये शब्दोंकी खैंचतान भी हमें इष्ट नहीं है। हमारी मंगलनिष्ठा केवल इस बातके प्रति है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी पावन एवं मधुर लीलाको इतिहासके पृष्ठोंमें शोभन-स्थान मिल सके—इत्यलम्।

['भगवान् श्रीकृष्णकी डायरी'का भूमिका-भाग]

स्नायुमण्डलका तुलनात्मक अध्ययन*

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)

पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) अधिक प्राचीन नहीं है। चिकित्सक विलियम हार्वे (William Harvey) के द्वारा १६२८ ई०में किये गये रक्तपरिसंचरण (Blood Circulation) अन्वेषणसे ही इसकी नींव पड़ी है। अर्ध १९वीं शताब्दी तक इसकी प्रगति बहुत धीरे-धीरे हुई थी, भले ही उस कालमें आगेकी प्रगतिके आधारभूत कुछ अन्वेषण हुए थे। ऐसी स्थितिमें भला आधुनिक युगके लोग यह कैसे मान सकते हैं कि भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान अतिप्राचीन कालमें भी आधुनिक कालके पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञानके ज्ञानसे अगर अधिक नहीं तो, किसी भी हालतमें न्यून नहीं था। किंतु शास्त्रोंके अध्ययनके द्वारा इसकी (भारतीय शरीर-विज्ञानकी) प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान ही योग तथा दर्शनका आधार था। अतः शरीर-विज्ञान (Physiology) भारतवर्षमें प्राचीनतम है। मानव-शरीर ही सम्पूर्ण कर्म-साधनाका आधार है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नर-देहका ज्ञान अति आवश्यक है; क्योंकि जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विद्यमान है, वह सब मानव-शरीरमें भी सूक्ष्मरूपसे विद्यमान है। 'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'। यदि हम ठीक-ठीक समग्र विश्वको जानना चाहते हैं तो उसके लिये हमें ठीक तरहसे मानव-शरीरको जानना चाहिये। इस तरहसे भारतवर्षमें मानव-शरीरका अध्ययन अति प्राचीनकालसे ही परम आवश्यक समझा जाता था। वेदोंमें भी इसको वर्णित किया गया है। अथर्ववेदमें मानव-शरीरको आठ चक्र, नौ द्वारोंवाली देवोंकी अयोध्यापुरी कहा गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(का०—१०, अ० १, सू०—२, ३१)

मानव-शरीर भोगायतन है। साथ-ही-साथ इसमें कर्मकी स्वतन्त्रता भी है, जिससे पूर्णत्वकी ओर बढ़ना हो सकता है; क्योंकि उसके लिये (पूर्णत्व प्राप्त करनेके लिये) कर्मपथ-पर आना ही पड़ता है। इसी कारण परमार्थ-सिद्धिके लिये मानव-शरीर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके ज्ञानपर ही विश्वातीत सत्ताका ज्ञान भी अवलम्बित है। अतः भारतीय परम्परामें मानव-शरीरका सही-सही पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान अनिवार्य-सा ही था। उसके बिना एक पग भी बढ़ना कठिन था। भारतीय मनोविज्ञान शरीर-विज्ञानके ऊपर आधारित है। दिव्य देह प्राप्त करने तथा अमरत्व प्राप्त करनेके लिये यथार्थरूपसे मानव-देह-ज्ञान प्राचीन योगी लोग आवश्यक समझते थे। प्राचीन योगियोंने मानव-देहका अच्छी तरहसे विश्लेषण किया है जो कि योग-ग्रन्थोंमें विभिन्न स्थलोंपर अपने-अपने ढंगसे दिया गया है। योगाभ्यासके लिये मानव-शरीरमें विद्यमान छः चक्रों (९ चक्रों), सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों, पाँच आकाशों, बारह ग्रन्थियों, तीन शक्तियों, तीन धाम तथा नाड़ीचक्रका प्रधानरूपसे क्रमशः ज्ञान होना अति आवश्यक है।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामधारकः॥

(सि० सि० पद्धति २। ३१)

---

* विशद विवेचनके लिये लेखकके 'योग-मनोविज्ञान' तथा 'भारतीय मनोविज्ञान' नामक ग्रन्थ देखनेका कष्ट करें। (डा० शान्तिप्रकाश आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, सिटी पैलेस बलरामपुर, गोंडा, उ० प्र०)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः ॥
(गोरक्षपद्धति १३)

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत् ॥
(योगचूडामण्युपनिषत् ३)

योगीको तो मानव-शरीरमें स्थित इन आन्तरिक विषयोंका ज्ञान भली प्रकारसे होना ही चाहिये। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्रार—ये योगग्रन्थोंमें दिये गये चक्रोंके प्रचलित नाम हैं। ('योगमनोविज्ञान' अध्याय २६में पृष्ठ ३६७ से ३८३ तक) सहस्रार चक्रको चक्र नहीं माना गया है। अतः षट् चक्र ही कहे जाते हैं। नाथयोगी इन चक्रोंकी संख्या ९ मानते हैं। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति'में ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, नाभिचक्र, हृदयद्वार, कण्ठचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, निर्वाणचक्र, आकाशचक्र नाम मिलते हैं। ('सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' २। १ से ९ तक।) सोलह आधारों, अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य और मध्यलक्ष्य (उभयलक्ष्य), इन तीनों लक्ष्यों तथा निर्गुण आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश आदि पञ्च आकाशोंका विवेचन 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' तथा अन्य योग-ग्रन्थोंमें मिलता है। (सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति २। १० से ३० तक) इसके अतिरिक्त शुद्ध चेतनके आवरणस्वरूप १२ ग्रन्थियोंका भी ज्ञान योगीको होना चाहिये, जिनका उल्लेख तान्त्रिक योग-ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। माया, पाशव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति—ये १२ ग्रन्थियोंके नाम हैं। चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि—ये तीन धाम हैं। (तान्त्रिक वाङ्मयमें शाक्त दृष्टि-देह-विज्ञान १११, ११२) योग-ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे १४ नाड़ियोंके नाम प्राप्त होते हैं। जिनमें इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं। इनमें भी सुषुम्नाका स्थान योगमें सर्वोच्च है। अन्य सब नाड़ियाँ उसके अधीन हैं। नाड़ियोंकी संख्या अधिकाधिक ही होती चली जाती है। नाड़ियाँ तथा उपनाड़ियाँ सचमुचमें अनन्त हैं। उनमें सम्पूर्ण शरीर गुथा हुआ है। वे हमारे रोम-रोमसे जुड़ी हैं। (योगमनोविज्ञान पृष्ठ ३४७ से ३८९ तक)

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि प्राचीन योगियोंको शरीर-विज्ञानका भली प्रकार ज्ञान था। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये तथा इस बातका अन्वेषण करना चाहिये कि भारतीय प्राचीन शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान आधुनिक पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) की तुलनामें कौन-सा स्थान प्राप्त करता है। वह किस सीमा तक निम्न, समान वा अधिक है। दूसरे, विद्वानोंको इस बातका भी अन्वेषण करना चाहिये कि प्राचीन विद्वानोंने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया था? क्या इस पद्धतिसे आज भी यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? शास्त्रोंमें हमें विच्छेदन-क्रिया (Dissection) के प्रमाण भी मिलते हैं। तक्षशिला आदि शिक्षा-केन्द्रोंमें शल्य-चिकित्सा-शिक्षणके प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। रोगीकी हृदय-शल्य-क्रिया विद्यार्थियोंको परीक्षामें दिये जानेके प्रमाण भी उपलब्ध हैं।

पाश्चात्त्य आधुनिक शरीर-विज्ञानमें स्नायुमण्डलके अन्तर्गत केन्द्रीय स्नायुमण्डल, स्वतः संचालित स्नायुमण्डल तथा सम्पूर्ण नाड़ी-जालका विवेचन किया गया है। केन्द्रीय स्नायुमण्डलके अन्तर्गत सुषुम्ना तथा मस्तिष्क आते हैं।

(१) सुषुम्ना[1]

तन्त्रों तथा सब योगशास्त्रोंमें सुषुम्नाका विवेचन अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है। शाण्डिल्योपनिषद्में स्पष्ट-रूपसे दिया है कि सुषुम्ना गुदाके पीछे मेरुदण्ड (Vertebral Column) में विद्यमान है, जिसमें ब्रह्मरन्ध्र ऊपर शीर्षतक चला गया है, जहाँ जाते-जाते यह स्पष्ट, सूक्ष्म तथा व्यापक हो जाता है। इस सुषुम्नाको विश्वधारिणी तथा मोक्षका मार्ग बताया है। यहाँ इस कथनसे स्पष्ट है कि यहाँ सुषुम्ना, मेरु-दण्ड-रज्जु तथा ब्रह्मरन्ध्र, मेरु-दण्ड-रज्जुका केन्द्रीय छिद्र (The central canal of the Spinal Cord) ही है जो निम्न भागसे प्रारम्भ होकर खोपड़ीके छिद्र (Foramen Magnum) तक चला जाता है।

तत्र सुषुम्ना विश्वधारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते।

गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रेति विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति ॥
(शाण्डिल्योपनिषद् १। ४। १०)

यह छिद्र खोपड़ीके पीछेवाली हड्डी (Occipital bone)

१. योगमनोविज्ञान—२६ अध्याय।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आयीः न इनके पीछे मात्र श्रद्धाका बल निहित है। भावना एवं श्रद्धा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके प्रति हमें अधिक-से-अधिक विनम्र ही बना सकती हैं। इन पंक्तियोंमें उपस्थित पौराणिक संदर्भोंका जो समुचित समन्वय किया गया है, उसके पीछे अभिनव अनुसंधानकी भावना निहित है। अभीष्ट अर्थ-संदोहनके लिये शब्दोंकी खैंचतान भी हमें इष्ट नहीं है। हमारी मंगलनिष्ठा केवल इस बातके प्रति है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी पावन एवं मधुर लीलाको इतिहासके पृष्ठोंमें शोभन-स्थान मिल सके—इत्यलम्।

['भगवान् श्रीकृष्णकी डायरी'का भूमिका-भाग]

स्नायुमण्डलका तुलनात्मक अध्ययन*

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)

पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) अधिक प्राचीन नहीं है। चिकित्सक विलियम हार्वे (William Harvey) के द्वारा १६२८ ई०में किये गये रक्तपरिसंचरण (Blood Circulation) अन्वेषणसे ही इसकी नींव पड़ी है। अर्ध १९वीं शताब्दी तक इसकी प्रगति बहुत धीरे-धीरे हुई थी, भले ही उस कालमें आगेकी प्रगतिके आधारभूत कुछ अन्वेषण हुए थे। ऐसी स्थितिमें भला आधुनिक युगके लोग यह कैसे मान सकते हैं कि भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान अतिप्राचीन कालमें भी आधुनिक कालके पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञानके ज्ञानसे अगर अधिक नहीं तो, किसी भी हालतमें न्यून नहीं था। किंतु शास्त्रोंके अध्ययनके द्वारा इसकी (भारतीय शरीर-विज्ञानकी) प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान ही योग तथा दर्शनका आधार था। अतः शरीर-विज्ञान (Physiology) भारतवर्षमें प्राचीनतम है। मानव-शरीर ही सम्पूर्ण कर्म-साधनाका आधार है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नर-देहका ज्ञान अति आवश्यक है; क्योंकि जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विद्यमान है, वह सब मानव-शरीरमें भी सूक्ष्मरूपसे विद्यमान है। 'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'। यदि हम ठीक-ठीक समग्र विश्वको जानना चाहते हैं तो उसके लिये हमें ठीक तरहसे मानव-शरीरको जानना चाहिये। इस तरहसे भारतवर्षमें मानव-शरीरका अध्ययन अति प्राचीनकालसे ही परम आवश्यक समझा जाता था। वेदोंमें भी इसको वर्णित किया गया है। अथर्ववेदमें मानव-शरीरको आठ चक्र, नौ द्वारोंवाली देवोंकी अयोध्यापुरी कहा गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
(का०—१०, अ० १, सू०—२, ३१)

मानव-शरीर भोगायतन है। साथ-ही-साथ इसमें कर्मकी स्वतन्त्रता भी है, जिससे पूर्णत्वकी ओर बढ़ना हो सकता है; क्योंकि उसके लिये (पूर्णत्व प्राप्त करनेके लिये) कर्मपथ-पर आना ही पड़ता है। इसी कारण परमार्थ-सिद्धिके लिये मानव-शरीर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके ज्ञानपर ही विश्वातीत सत्ताका ज्ञान भी अवलम्बित है। अतः भारतीय परम्परामें मानव-शरीरका सही-सही पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान अनिवार्य-सा ही था। उसके बिना एक पग भी बढ़ना कठिन था। भारतीय मनोविज्ञान शरीर-विज्ञानके ऊपर आधारित है। दिव्य देह प्राप्त करने तथा अमरत्व प्राप्त करनेके लिये यथार्थरूपसे मानव-देह-ज्ञान प्राचीन योगी लोग आवश्यक समझते थे। प्राचीन योगियोंने मानव-देहका अच्छी तरहसे विश्लेषण किया है जो कि योग-ग्रन्थोंमें विभिन्न स्थलोंपर अपने-अपने ढंगसे दिया गया है। योगाभ्यासके लिये मानव-शरीरमें विद्यमान छः चक्रों (९ चक्रों), सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों, पाँच आकाशों, बारह ग्रन्थियों, तीन शक्तियों, तीन धाम तथा नाड़ीचक्रका प्रधानरूपसे क्रमशः ज्ञान होना अति आवश्यक है।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामधारकः॥
(सि० सि० पद्धति २। ३१)

* विशद विवेचनके लिये लेखकके 'योग-मनोविज्ञान' तथा 'भारतीय मनोविज्ञान' नामक ग्रन्थ देखनेका कष्ट करें। (डा० शान्तिप्रकाश आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, सिटी पैलेस बलरामपुर, गोंडा, उ० प्र०)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥
(गोरक्षपद्धति १३)

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत्॥
(योगचूडामण्युपनिषत् ३)

योगीको तो मानव-शरीरमें स्थित इन आन्तरिक विषयोंका ज्ञान भली प्रकारसे होना ही चाहिये। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्रार—ये योगग्रन्थोंमें दिये गये चक्रोंके प्रचलित नाम हैं। ('योगमनोविज्ञान' अध्याय २६में पृष्ठ ३६७ से ३८३ तक) सहस्रार चक्रको चक्र नहीं माना गया है। अतः षट् चक्र ही कहे जाते हैं। नाथयोगी इन चक्रोंकी संख्या ९ मानते हैं। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति'में ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, नाभिचक्र, हृदयद्वार, कण्ठचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, निर्वाणचक्र, आकाशचक्र नाम मिलते हैं। ('सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' २। १ से ९ तक।) सोलह आधारों, अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य और मध्यलक्ष्य (उभयलक्ष्य), इन तीनों लक्ष्यों तथा निर्गुण आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश आदि पञ्च आकाशोंका विवेचन 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' तथा अन्य योग-ग्रन्थोंमें मिलता है। (सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति २। १० से ३० तक) इसके अतिरिक्त शुद्ध चेतनके आवरणस्वरूप १२ ग्रन्थियोंका भी ज्ञान योगीको होना चाहिये, जिनका उल्लेख तान्त्रिक योग-ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। माया, पाशव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति—ये १२ ग्रन्थियोंके नाम हैं। चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि—ये तीन धाम हैं। (तान्त्रिक वाङ्मयमें शाक्त दृष्टि-देह-विज्ञान १११, ११२) योग-ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे १४ नाड़ियोंके नाम प्राप्त होते हैं। जिनमें इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं। इनमें भी सुषुम्नाका स्थान योगमें सर्वोच्च है। अन्य सब नाड़ियाँ उसके अधीन हैं। नाड़ियोंकी संख्या अधिकाधिक ही होती चली जाती है। नाड़ियाँ तथा उपनाड़ियाँ सचमुचमें अनन्त हैं। उनमें सम्पूर्ण शरीर गुथा हुआ है। वे हमारे रोम-रोमसे जुड़ी हैं। (योगमनोविज्ञान पृष्ठ ३४७ से ३८९ तक)

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि प्राचीन योगियोंको शरीर-विज्ञानका भली प्रकार ज्ञान था। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये तथा इस बातका अन्वेषण करना चाहिये कि भारतीय प्राचीन शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान आधुनिक पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) की तुलनामें कौन-सा स्थान प्राप्त करता है। वह किस सीमा तक निम्न, समान वा अधिक है। दूसरे, विद्वानोंको इस बातका भी अन्वेषण करना चाहिये कि प्राचीन विद्वानोंने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया था? क्या इस पद्धतिसे आज भी यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? शास्त्रोंमें हमें विच्छेदन-क्रिया (Dissection) के प्रमाण भी मिलते हैं। तक्षशिला आदि शिक्षा-केन्द्रोंमें शल्य-चिकित्सा-शिक्षणके प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। रोगीकी हृदय-शल्य-क्रिया विद्यार्थियोंको परीक्षामें दिये जानेके प्रमाण भी उपलब्ध हैं।

पाश्चात्त्य आधुनिक शरीर-विज्ञानमें स्नायुमण्डलके अन्तर्गत केन्द्रीय स्नायुमण्डल, स्वतः संचालित स्नायुमण्डल तथा सम्पूर्ण नाड़ी-जालका विवेचन किया गया है। केन्द्रीय स्नायुमण्डलके अन्तर्गत सुषुम्ना तथा मस्तिष्क आते हैं।

(१) सुषुम्ना[1]

तन्त्रों तथा सब योगशास्त्रोंमें सुषुम्नाका विवेचन अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है। शाण्डिल्योपनिषद्में स्पष्ट-रूपसे दिया है कि सुषुम्ना गुदाके पीछे मेरुदण्ड (Vertebral Column) में विद्यमान है, जिसमें ब्रह्मरन्ध्र ऊपर शीर्षतक चला गया है, जहाँ जाते-जाते यह स्पष्ट, सूक्ष्म तथा व्यापक हो जाता है। इस सुषुम्नाको विश्वधारिणी तथा मोक्षका मार्ग बताया है। यहाँ इस कथनसे स्पष्ट है कि यहाँ सुषुम्ना, मेरु-दण्ड-रज्जु तथा ब्रह्मरन्ध्र, मेरु-दण्ड-रज्जुका केन्द्रीय छिद्र (The central canal of the Spinal Cord) ही है जो निम्न भागसे प्रारम्भ होकर खोपड़ीके छिद्र (Foramen Magnum) तक चला जाता है।

तत्र सुषुम्ना विश्वधारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते।

गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रेति विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति॥

(शाण्डिल्योपनिषद् १। ४। १०)

यह छिद्र खोपड़ीके पीछेवाली हड्डी (Occipital bone)

१. योगमनोविज्ञान—२६ अध्याय।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आर्षी; न इनके पीछे मात्र श्रद्धाका बल निहित है। भावना एवं श्रद्धा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके प्रति हमें अधिक-से-अधिक विनम्र ही बना सकती हैं। इन पंक्तियोंमें उपस्थित पौराणिक संदर्भोंका जो समुचित समन्वय किया गया है, उसके पीछे अभिनव अनुसंधानकी भावना निहित है। अभीष्ट अर्थ-संदोहनके लिये शब्दोंकी खैंचतान भी हमें इष्ट नहीं है। हमारी मंगलनिष्ठा केवल इस बातके प्रति है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी पावन एवं मधुर लीलाको इतिहासके पृष्ठोंमें शोभन-स्थान मिल सके—इत्यलम्।

['भगवान् श्रीकृष्णकी डायरी'का भूमिका-भाग]

स्नायुमण्डलका तुलनात्मक अध्ययन*

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)

पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) अधिक प्राचीन नहीं है। चिकित्सक विलियम हार्वे (William Harvey) के द्वारा १६२८ ई०में किये गये रक्तपरिसंचरण (Blood Circulation) अन्वेषणसे ही इसकी नींव पड़ी है। अर्ध १९वीं शताब्दी तक इसकी प्रगति बहुत धीरे-धीरे हुई थी, भले ही उस कालमें आगेकी प्रगतिके आधारभूत कुछ अन्वेषण हुए थे। ऐसी स्थितिमें भला आधुनिक युगके लोग यह कैसे मान सकते हैं कि भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान अतिप्राचीन कालमें भी आधुनिक कालके पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञानके ज्ञानसे अगर अधिक नहीं तो, किसी भी हालतमें न्यून नहीं था। किंतु शास्त्रोंके अध्ययनके द्वारा इसकी (भारतीय शरीर-विज्ञानकी) प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। भारतवर्षमें शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान ही योग तथा दर्शनका आधार था। अतः शरीर-विज्ञान (Physiology) भारतवर्षमें प्राचीनतम है। मानव-शरीर ही सम्पूर्ण कर्म-साधनाका आधार है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नर-देहका ज्ञान अति आवश्यक है; क्योंकि जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विद्यमान है, वह सब मानव-शरीरमें भी सूक्ष्मरूपसे विद्यमान है। 'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'। यदि हम ठीक-ठीक समग्र विश्वको जानना चाहते हैं तो उसके लिये हमें ठीक तरहसे मानव-शरीरको जानना चाहिये। इस तरहसे भारतवर्षमें मानव-शरीरका अध्ययन अति प्राचीनकालसे ही परम आवश्यक समझा जाता था। वेदोंमें भी इसको वर्णित किया गया है। अथर्ववेदमें मानव-शरीरको आठ चक्र, नौ द्वारोंवाली देवोंकी अयोध्यापुरी कहा गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
(का०—१०, अ० १, सू०—२, ३१)

मानव-शरीर भोगायतन है। साथ-ही-साथ इसमें कर्मकी स्वतन्त्रता भी है, जिससे पूर्णत्वकी ओर बढ़ना हो सकता है; क्योंकि उसके लिये (पूर्णत्व प्राप्त करनेके लिये) कर्मपथ-पर आना ही पड़ता है। इसी कारण परमार्थ-सिद्धिके लिये मानव-शरीर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके ज्ञानपर ही विश्वातीत सत्ताका ज्ञान भी अवलम्बित है। अतः भारतीय परम्परामें मानव-शरीरका सही-सही पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान अनिवार्य-सा ही था। उसके बिना एक पग भी बढ़ना कठिन था। भारतीय मनोविज्ञान शरीर-विज्ञानके ऊपर आधारित है। दिव्य देह प्राप्त करने तथा अमरत्व प्राप्त करनेके लिये यथार्थरूपसे मानव-देहके ज्ञानी प्राचीन योगी लोग आवश्यक समझते थे। प्राचीन योगियोंने मानव-देहका अच्छी तरहसे विश्लेषण किया है जो कि योग-ग्रन्थोंमें विभिन्न स्थलोंपर अपने-अपने ढंगसे दिया गया है। योगाभ्यासके लिये मानव-शरीरमें विद्यमान छः चक्रों (९ चक्रों), सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों, पाँच आकाशों, बारह ग्रन्थियों, तीन शक्तियों, तीन धाम तथा नाड़ीचक्रका प्रधानरूपसे क्रमशः ज्ञान होना अति आवश्यक है।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामधारकः॥
(सि० सि० पद्धति २। ३१)

* विशद विवेचनके लिये लेखकके 'योग-मनोविज्ञान' तथा 'भारतीय मनोविज्ञान' नामक ग्रन्थ देखनेका कष्ट करें। (डा० शान्तिप्रकाश आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, सिटी पैलेस बलरामपुर, गोंडा, उ० प्र०)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥
(गोरक्षपद्धति १३)

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत्॥
(योगचूडामण्युपनिषत् ३)

योगीको तो मानव-शरीरमें स्थित इन आन्तरिक विषयोंका ज्ञान भली प्रकारसे होना ही चाहिये। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्रार—ये योगग्रन्थोंमें दिये गये चक्रोंके प्रचलित नाम हैं। ('योगमनोविज्ञान' अध्याय २६में पृष्ठ ३६७ से ३८३ तक) सहस्रार चक्रको चक्र नहीं माना गया है। अतः षट् चक्र ही कहे जाते हैं। नाथयोगी इन चक्रोंकी संख्या ९ मानते हैं। 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति'में ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, नाभिचक्र, हृदयद्वार, कण्ठचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, निर्वाणचक्र, आकाशचक्र नाम मिलते हैं। ('सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' २। १ से ९ तक।) सोलह आधारों, अन्तर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य और मध्यलक्ष्य (उभयलक्ष्य), इन तीनों लक्ष्यों तथा निर्गुण आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश आदि पञ्च आकाशोंका विवेचन 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' तथा अन्य योग-ग्रन्थोंमें मिलता है। (सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति २। १० से ३० तक) इसके अतिरिक्त शुद्ध चेतनके आवरणस्वरूप १२ ग्रन्थियोंका भी ज्ञान योगीको होना चाहिये, जिनका उल्लेख तान्त्रिक योग-ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। माया, पाशव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति—ये १२ ग्रन्थियोंके नाम हैं। चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि—ये तीन धाम हैं। (तान्त्रिक वाङ्मयमें शाक्त दृष्टि-देह-विज्ञान १११, ११२) योग-ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे १४ नाड़ियोंके नाम प्राप्त होते हैं। जिनमें इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं। इनमें भी सुषुम्नाका स्थान योगमें सर्वोच्च है। अन्य सब नाड़ियाँ उसके अधीन हैं। नाड़ियोंकी संख्या अधिकाधिक ही होती चली जाती है। नाड़ियाँ तथा उपनाड़ियाँ सचमुचमें अनन्त हैं। उनमें सम्पूर्ण शरीर गुथा हुआ है। वे हमारे रोम-रोमसे जुड़ी हैं। (योगमनोविज्ञान पृष्ठ ३४७ से ३८९ तक)

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि प्राचीन योगियोंको शरीर-विज्ञानका भली प्रकार ज्ञान था। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये तथा इस बातका अन्वेषण करना चाहिये कि भारतीय प्राचीन शरीर-विज्ञान (Physiology) का ज्ञान आधुनिक पाश्चात्त्य शरीर-विज्ञान (Physiology) की तुलनामें कौन-सा स्थान प्राप्त करता है। वह किस सीमा तक निम्न, समान वा अधिक है। दूसरे, विद्वानोंको इस बातका भी अन्वेषण करना चाहिये कि प्राचीन विद्वानोंने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया था? क्या इस पद्धतिसे आज भी यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? शास्त्रोंमें हमें विच्छेदन-क्रिया (Dissection) के प्रमाण भी मिलते हैं। तक्षशिला आदि शिक्षा-केन्द्रोंमें शल्य-चिकित्सा-शिक्षणके प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। रोगीकी हृदय-शल्य-क्रिया विद्यार्थियोंको परीक्षामें दिये जानेके प्रमाण भी उपलब्ध हैं।

पाश्चात्त्य आधुनिक शरीर-विज्ञानमें स्नायुमण्डलके अन्तर्गत केन्द्रीय स्नायुमण्डल, स्वतः संचालित स्नायुमण्डल तथा सम्पूर्ण नाड़ी-जालका विवेचन किया गया है। केन्द्रीय स्नायुमण्डलके अन्तर्गत सुषुम्ना तथा मस्तिष्क आते हैं।

(१) सुषुम्ना[1]

तन्त्रों तथा सब योगशास्त्रोंमें सुषुम्नाका विवेचन अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है। शाण्डिल्योपनिषद्में स्पष्ट-रूपसे दिया है कि सुषुम्ना गुदाके पीछे मेरुदण्ड (Vertebral Column) में विद्यमान है, जिसमें ब्रह्मरन्ध्र ऊपर शीर्षतक चला गया है, जहाँ जाते-जाते यह स्पष्ट, सूक्ष्म तथा व्यापक हो जाता है। इस सुषुम्नाको विश्वधारिणी तथा मोक्षका मार्ग बताया है। यहाँ इस कथनसे स्पष्ट है कि यहाँ सुषुम्ना, मेरु-दण्ड-रज्जु तथा ब्रह्मरन्ध्र, मेरु-दण्ड-रज्जुका केन्द्रीय छिद्र (The central canal of the Spinal Cord) ही है जो निम्न भागसे प्रारम्भ होकर खोपड़ीके छिद्र (Foramen Magnum) तक चला जाता है।

तत्र सुषुम्ना विश्वधारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते।

गुदस्य पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रेति विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति॥
(शाण्डिल्योपनिषद् १। ४। १०)

यह छिद्र खोपड़ीके पीछेवाली हड्डी (Occipital bone)

---

१. योगमनोविज्ञान—२६ अध्याय।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

में स्थित है। योगशिखोपनिषद्में हृदयकी १०१ नाड़ियोंका विवेचन मिलता है, जिनमेंसे एक नाड़ी शीर्षकी तरफको सीधी चली जाती है। इन १०१ नाड़ियोंमें एक समस्त दूषणोंसे रहित परा नाड़ी है, जिसमें ब्रह्मरूप सुषुम्ना विद्यमान है। गुदाके पृष्ठभागमें शरीरको धारण करनेवाला मेरुदण्ड है। इसके खोखले भागमें इड़ा तथा पिंगलाके बीच ब्रह्मनाड़ी स्थित है। इस ब्रह्मनाड़ीको ही सुषुम्ना कहा गया है, जिससे शरीरकी समस्त नाड़ियाँ सम्बन्धित हैं। इसीमें समस्त विश्व स्थित है। यही विश्वके प्राणियोंकी अन्तरात्मा है—

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥

एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये परा स्मृता।
सुषुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी ॥
इडा तिष्ठति वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु।
तयोर्मध्ये परं स्थानं यस्तद्वेद स वेदवित् ॥
प्राणान् संधारयेत्तस्मिन् नासाभ्यन्तरचारिणः।
भूत्वा तत्रायतप्राणः शनैरेव समभ्यसेत् ॥
गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन्वीणादण्डस्तु देहभृत्।
दीर्घास्थिदेहपर्यन्तं ब्रह्मनाडीति कथ्यते ॥
तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं ब्रह्मनाडीति सूरिभिः।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना सूर्यरूपिणी ॥
सुषुम्नान्तर्गतं विश्वं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।
नानानाडीप्रसवगं सर्वभूतान्तरात्मनि ॥

(योगशिखोपनिषद् ६। ४—९, १३)

सुषुम्नाके महत्त्वको भी इस उपनिषद्में बड़े सुन्दर ढंगसे बताया गया है—

गङ्गायां सागरे स्नात्वा नत्वा च मणिकर्णिकाम्।
मध्यनाडीविचारस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
श्रीशैलदर्शनान्मुक्तिर्वाराणस्यां मृतस्य च।
केदारोदकपानेन मध्यनाडीप्रदर्शनात् ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
सुषुम्नाध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
सुषुम्नायां यदा गोष्ठीं यः कश्चित्कुरुते नरः।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो निःश्रेयसमवाप्नुयात् ॥
सुषुम्नैव वरं तीर्थं सुषुम्नैव परो जपः।
सुषुम्नैव परं ध्यानं सुषुम्नैव परा गतिः ॥
अनेकयज्ञदानानि व्रतानि नियमास्तथा।
सुषुम्नाध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

(६। ४१—४६)

सुषुम्नाकी स्थिति शरीरके मध्यमें है, जो मूलाधारसे प्रारम्भ होकर ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचती है।

देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते।
सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति ॥

(अद्वयतारकोपनिषद् ५)

त्रिशिखोपनिषद्में भी बताया है कि यह पद्म सूत्रकी तरह है तथा मूलाधार चक्रपर स्थित है और वहाँसे सीधी ऊपरकी ओर जाती है—

कंदमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।
पद्मसूत्रप्रतीकाशा ऋजुरूर्ध्वप्रवर्तिनी ॥

(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् मन्त्रभाग ६७)

दर्शनोपनिषद्में १४ नाड़ियोंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनाड़ीको सुषुम्ना कहा है, जो रीढ़की हड्डियोंके छिद्रमें स्थित है। यह इन रीढ़की हड्डियोंके छिद्रोंमेंसे होकर सीधे मस्तिष्कतक चली गयी है—

कंदमध्यस्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता।
तिष्ठन्ति परितस्तस्य नाड्यो मुनिपुंगव।
द्विसप्ततिसहस्राणि तासां मुख्याश्चतुर्दश ॥
आसां मुख्यतमास्तिस्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा।
ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता मुने वेदान्तवेदिभिः ॥
पृष्ठमध्यस्थिते नाम्ना वीणादण्डेन सुव्रत।
सहमस्तकपर्यन्तं सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता ॥

(दर्शनोपनिषद् ४। ५—१०)

ब्रह्मविद्योपनिषद्में भी उपर्युक्त विवेचनके समान ही सुषुम्नाका परा नाड़ीके नामसे वर्णन मिलता है—

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मशिखा सा दृश्यते परा।
सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथापरा ॥

(ब्रह्मविद्योपनिषद् १०)

षट्-चक्र-निरूपणमें सुषुम्ना नाड़ीके भीतर वज्रा नाड़ी तथा वज्राके भीतर तीसरी चित्रणी नामक नाड़ी बतायी गयी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुषुम्ना नाड़ीमें कई नाड़ियाँ सम्मिलित हैं तथा ब्रह्मनाड़ी, चित्रणी, वज्रा, सुषुम्ना ये सब मिलकर मेरु-दण्ड-रज्जु (Spinal Cord) कही जा

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सकती हैं। मेरुदण्ड (Vertebral Column) में ही सुषुम्ना ब्रह्मनाड़ी तथा मनोवहा नाड़ी स्थित हैं। शिवसंहितामें मेरु-दण्ड-रज्जुकी सबसे भीतरी चित्राके सूक्ष्मतम छिद्रको ब्रह्मरन्ध्रका नाम दिया गया है। चित्रा सुषुम्नाके मध्यमें फैली हुई है। यह सुषुम्नाका केन्द्र तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मार्मिक भाग है। यह अमरत्व प्रदान करनेवाली तथा ध्यान करनेसे योगीके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है। शिव-संहितामें सुषुम्नाको ही ब्रह्ममार्गसे सम्बोधित किया है। मस्तिष्कीय रन्ध्रपर ही सुषुम्नाका मस्तिष्कसे सम्बन्ध होता है। चित्रा पाँच मौलिक रंगोंवाली चमकदार बतायी गयी है।

तासां मध्ये गता नाडी चित्रा सा मम वल्लभा।
ब्रह्मरध्रं च तत्रैव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शुभम्॥
पञ्चवर्णोज्ज्वला शुद्धा सुषुम्णामध्यचारिणी।
देहस्योपाधिरूपा सा सुषुम्णामध्यरूपिणी॥
दिव्यमार्गमिदं प्रोक्तममृतानन्दकारकम्।
ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो दुरितौघं विनाशयेत्॥

(शिवसंहिता २। १८—२०)

आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि इन पाँच मौलिक रंगोंके मिश्रित होनेपर भूरा रंग बन जाता है। अतः चित्राको चमकदार भूरे रंगकी बताया गया है। सुषुम्नाको श्वेत कहा है। ऋग्वेदके सौभाग्य-लक्ष्मी-उपनिषद्में भी सुषुम्नाका रंग श्वेत कहा है। सुषुम्नाकी स्थिति इड़ा और पिङ्गलाके मध्यमें बतायी गयी है।

कण्ठचक्रं चतुरङ्गुलम्, तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी दक्षिणे पिङ्गला सूर्यनाडी तन्मध्ये सुषुम्णां श्वेतवर्णां ध्यायेत।

शिवसंहितामें सहस्रदल-कमलको सुषुम्ना-छिद्रके ऊपरी भागपर स्थित बताया है। वहाँसे लिंग और गुदाके बीचके स्थानतक सुषुम्ना चली आती है। अन्य सब नाड़ियाँ इसे घेरे हैं तथा इसके आश्रित हैं। सुषुम्ना, अधोमुखी योनिसे जो कि सहस्रदलकमलके मध्यमें है, निकलकर मूलाधार तक जाती है तथा सुषुम्ना-छिद्र भी इस छिद्रसे प्रारम्भ होकर मूलाधारतक चला गया है। ऊपरी छिद्रसे लेकर सुषुम्ना-छिद्रसहित समस्त छिद्रको ही, जिसमें मस्तिष्कका खोखला भाग भी सम्मिलित है, ब्रह्मरन्ध्र कहा गया है।

अत ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्।
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्॥
तालुमूले सुषुम्णा सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते।
मूलाधारेण योन्यन्ताः सर्वनाड्यः समाश्रिताः॥
ता बीजभूतास्तत्त्वस्य ब्रह्ममार्गप्रदायिकाः।
तालुस्थाने च यत्पद्मं सहस्रारं पुराहितम्।
तत्कंदे योनिरेकास्ति पश्चिमाभिमुखी मता॥
तस्या मध्ये सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्।
ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तमामूलाधारपङ्कजम्॥

(शिवसंहिता ५। १५९—१६२)

तन्त्रोंमें मस्तिष्क और सुषुम्नाको ही चेतनाका केन्द्र माना है। मस्तिष्क और सुषुम्नाके नीचेसे ऊपरके सब भागोंसे ही चेतनाका कार्य होता है। सुषुम्नाके भीतर चित्रानामक शक्तिमेंसे होकर चेतनाका प्रवाह चलता है। सुषुम्नाके आधारमें स्थित खोखले स्थान ब्रह्मरन्ध्रके मुखपर ही इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना मिलती हैं। इस स्थानको त्रिवेणीका प्रयाग कहा गया है।

ब्रह्मरन्ध्रं तु तत्रैव सुषुम्णाधारमण्डले।
यो जानाति स मुक्तः स्यात्कर्मबन्धाद्विचक्षणः॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती।
तासां तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति परां गतिम्॥

(शि० सं० ५। १७१, १७३)

सुमेरु पर्वतके समान ही शरीरके मध्यमें मेरु सुषुम्ना (Spinal Cord) है, जिसके ऊपर आठ कलाओंवाला अर्धचन्द्र स्थित है, जिसका मुख नीचेकी तरफको है तथा जिससे दिन-रात निरन्तर अमृतकी वर्षा होती रहती है। इस अमृतके दो भाग हो जाते हैं। एक भागके द्वारा मस्तिष्क और सुषुम्ना आदिकी रक्षा होती है, दूसरा भाग सुषुम्ना-रन्ध्रमें प्रवेश करता है तथा वहाँसे फिर वापिस होकर निकलता रहता है।

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथा देशं व्यवस्थितः।
मेरुशृङ्गे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः॥
वर्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः।
ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा च वै॥
इडामार्गेण पुष्ट्यर्थं याति मन्दाकिनी जलम्।
पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम्॥
एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थितः॥
अपरः शुद्धदुग्धाभो हठात्कर्षति मण्डलात्।
मध्यमार्गेण सृष्ट्यर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः॥

(शि० सं० २। ६—९)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सुषुम्नामें प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex Action) के केन्द्रों तथा उसके समन्वयात्मक कार्य आदिका विवरण शिवसंहितामें प्राप्त होता है। उसके अतिरिक्त सुषुम्नाके पाँचों विभागोंकी तरफ भी संकेत मिलता है, जो कि ग्रीवा-सम्बन्धी (Cervical), वक्षभाग (Dorsal), कमरका भाग (Lumbar), त्रिक भाग (Sacral), अनुत्रिक भाग (Coccygeal) है। ये पाँच भाग मेरुदण्डके हैं, जिनमें सुषुम्ना स्थित है।

इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत् खलु।
षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः॥
पञ्चस्थानं सुषुम्णाया नामानि स्युर्बहूनि च।
प्रयोजनवशात्तानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रतः॥
(शि० सं० २ । २७-२८)

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट होता है कि भारतीय प्राचीन शास्त्रोंमें किया गया सुषुम्नाका विवेचन आधुनिक शरीर-विज्ञान (Physiology) तथा शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy) के समान ही है। आधुनिक शरीर-विज्ञान (Physiology) के अनुसार भी मेरु-दंड-रज्जु (Spinal Cord) रीढ़की हड्डियों (मेरुदण्ड) के भीतर है। निम्न भागसे लेकर ऊपर सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata) तक सुषुम्ना चली गयी है। इसी स्थानको शास्त्रोंमें त्रिवेणी वा प्रयाग कहा है। आधुनिक शरीर-विज्ञानमें भी इसका महत्त्व और कार्य शास्त्रोंमें कहे गये महत्त्व तथा कार्यके समान ही है। शरीर-विज्ञानमें इसके भीतरी पदार्थको भूरा बताया है। इस भूरे पदार्थ (Gray matter) को ही शास्त्रोंमें चित्रा कहा गया है, जिसका विवरण ऊपर किया जा चुका है। शरीर-विज्ञानमें भी इसके ऊपरी भागको शास्त्रोंके समान ही श्वेत माना है। यह उपर्युक्त पाँच विभागोंमें तो विभाजित है ही। सुषुम्ना-रन्ध्र ही जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहा गया है, शरीर-विज्ञान (Physiology) में मेरु-दण्ड-रज्जुका केन्द्रीय छिद्र (The Central Canal of Spinal Cord) कहा गया है। इस छिद्रमें सदैव प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal-fluid) प्रवाहित होता रहता है। (योग-मनोविज्ञान—अध्याय २६ । ३५९–३६३) इसे ही शास्त्रोंमें अमृत कहा है। शरीर-विज्ञानके अनुसार भी सुषुम्ना (Spinal Cord) से नाड़ियाँ उदय होकर सम्पूर्ण शरीरमें अपना जाल बिछाये हैं। आधुनिक शरीर-विज्ञान (Physiology) भी इसमें प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex Action) के केन्द्र तथा उसके समन्वयात्मक कार्यको मानता है। इस प्रकारसे सुषुम्नाकी रचना तथा कार्यका विवरण प्राचीन शास्त्रोंमें भी आधुनिक शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy) तथा शरीर-विज्ञान (Physiolcgy) के ही समान है, बल्कि शास्त्रोंके सूक्ष्म अध्ययनसे तो यह प्रतीत होता है कि आधुनिक अन्वेषणोंके आधारपर प्राप्त ज्ञानसे भी उन्हें कहीं अधिक ज्ञान था।

(२) मस्तिष्क[1]

मस्तिष्कके विषयमें योगशास्त्रोंमें पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है। शिव-संहितामें सहस्रारके मध्यमें उसे दो विभागोंमें विभाजित करनेवाली योनिका विवरण मिलता है, जिसके नीचे चन्द्रमा बताया गया है। सहस्रार बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) है तथा यह योनि महान्-रन्ध्र (Longitudinal fissure) है।

पुरा मयोक्ता या योनिः सहस्रारे सरोरुहे।
तस्याधो वर्तते चन्द्रस्तद्ध्यानं क्रियते बुधैः॥
(शि० सं० ५ । १७७)

१६ कलाओंवाले अमृतसे पूर्ण चन्द्रमाकी स्थिति सिरमें बतायी गयी है।

शिरःकपालविवरे ध्यायेद् दुग्धमहोदधिम्।
तत्र स्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्रं विचिन्तयेत्॥
शिरःकपालविवरे द्विरष्टकलया युतः।
पीयूषभानुं हंसाख्यं भावयेत्तं निरञ्जनम्॥
(शि० सं० ५ । १८८-१८९)

इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मस्तिष्कके १६ विभाग हैं जो कि प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal fluid) से युक्त हैं। मस्तिष्कके ये १६ भाग शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy) के अनुसार निम्नलिखित हो सकते हैं।

१. बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum), २. लघु मस्तिष्क (Cerebellum), ३. सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata), ४. सेतु (Pons), ५. मध्य मस्तिष्क (Mid brain), ६. महासंयोजक (Corpus Callosum), ७. रेखी पिण्ड (Corpus Striatum),

१. योगमनोविज्ञान—२६ । ३६३–६७)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

८. पीयूष-ग्रन्थि (Pituitary gland), ९. शीर्ष-ग्रन्थि (Pineal gland), १०. चेतक (Thalamus), ११. अधश्चेतक (Hypothalamus), १२. अधस्थैलमस (Subthalamus), १३. अनुथैलमस (Metathalamus), १४. एपीथैलैमस वा ऊर्ध्व चेतक (Epithalamus), १५. रक्तक-जालिकाएँ (Choroid Plexuses), १६. ब्रह्मरन्ध्र (Ventricles) ।

बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral Cortex) को शिव-संहितामें शिवका स्थान कैलाश कहा है। यह समस्त ज्ञान तथा चेतनाका केन्द्र आधुनिक शरीर-वैज्ञानिकोंद्वारा भी माना गया है । योगशास्त्रोंमें तो इसका बहुत विस्तृत विवेचन प्राप्त होता ही है । प्राचीनकालीन योगियोंको बृहन्मस्तिष्कीय वल्कके स्थानोंका ज्ञान था। वे स्थान हमारे प्रत्येक अङ्गसे सम्बन्धित केन्द्र हैं—ऐसा ज्ञान भी योगियोंको था।

गुदमूलशरीराणि शिरस्तत्र प्रतिष्ठितम् ।
भावयन्ति शरीराणि आपादतलमस्तकम् ॥

(गो० सं० १ । ७६)

सुषुम्ना शीर्ष (Medulla oblongata) का विवेचन योगशास्त्रोंमें मस्तिष्कके एक प्रमुख अङ्गके रूपमें मिलता है । यहाँपर सहानुभूतिक रज्जुओं (Sympathetic Cord) का मिलन होता है। यहींको होकर सब नाड़ियाँ अपने-अपने सम्बन्धित संवेदन क्षेत्रोंमें जाती हैं। यह गङ्गा (इड़ा), यमुना (पिङ्गला) तथा सरस्वती (सुषुम्ना) का मिलन-स्थान है, जिसे त्रिवेणी वा प्रयाग कहा गया है। शिव-संहितामें इसे अति गोपनीय तीर्थ बताया है ।

ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां संगमः स्यादसंशयः ।
तस्मिन् स्नाने स्नातकानां मुक्तिः स्यादविरोधतः ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती ।
तासां तु संगमे स्नात्वा धन्यो याति परां गतिम् ॥
इडा गङ्गा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका ।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां सङ्गोऽतिदुर्लभः ॥
सितासिते संगमे यो मनसा स्नानमाचरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्म सनातनम् ॥
.... ।
नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
गोप्तव्यं तत्प्रयत्नेन न व्याख्येयं कदाचन ॥

(शि० सं० ५ । १७२—१७५; १८१)

शास्त्रोंके अनुसार यह बहुत महत्त्वपूर्ण है । यह मेरु-दण्ड-रज्जुको मस्तिष्कसे मिलाता है । बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral Cortex) के परिवल्नों (Convolutions) को चन्द्रकला कहा गया है । शास्त्रोंमें चेतक (Thalamus) को मनश्चक्र कहा गया है। मेरु-दण्ड-रज्जु वा सुषुम्ना मस्तिष्कके चौथे खोखले भाग (Fourth Ventricle) तक पहुँचती है। तथा अन्तिम ऊपरी हिस्सेमें खुलती है, जहाँसे तृतीय खोखले हिस्से (Third Ventricle) में पहुँचती है । ये सब खोखले हिस्से (Ventricles) तथा सुषुम्नाका केन्द्रीय रन्ध्र मिलकर ब्रह्मरन्ध्र कहा गया है। ये सब रन्ध्र प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal fluid) से भरे रहते हैं। इसको शास्त्रोंमें अमृत कहा है। चारों रन्ध्रोंके ऊपरी भाग रक्तक-जालिका (Choroid Plexuses) को ढकनेवाले भाग एपीथीलियल (Epithelial) के द्वारा रक्तसे प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव विसरित होता है। मृदुतानिका (Pia mater) की तहें रन्ध्रों (Ventricle) के टेलाकोरायडिया (Tela-chorioidea) को बनाती हैं। इन तहोंकी रक्तवाहिकाओं (Blood vessels) से रक्तक-जालिका (Choroid Plexuses) निर्मित हैं । इन रक्तक-जालिकाओंसे ही प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal fluid) निकलता है ।

प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रवसे पार्श्व-रन्ध्रों (Lateral Ventricles) के भर जानेपर मोनरो रन्ध्र (Foramen of Monro) से होकर तृतीय रन्ध्र (Third Ventricle) तथा उसके बाद नाली या कुल्या (Aqueduct) से होकर चतुर्थ रन्ध्र (Fourth Ventricle) से मेगेन्डी-मध्यवर्ती-रन्ध्र (Medial Foramen of Magendie) तथा दो पार्श्वलस्चका रन्ध्र (Two Lateral Foramina of Luschka) के द्वारा अधोजाल-तानिका-स्थलों (Subarachnoid space) में जाकर अनु-मस्तिष्क-कुण्ड (Cisterna Magna) में पहुँचता है। अनुमस्तिष्क-कुण्ड (Cisterna-Magna) से प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro spinal fluid) मेरु-दण्ड-रज्जु-छिद्र वा सुषुम्ना-रन्ध्र (Spinal Canal) में प्रवेश करता है तथा वहाँसे फिर ऊपरका तरफको वापिस होकर अधोजाल-तानिका-स्थल (Subarachnoid space) में पहुँच जाता है। अनु-मस्तिष्क-कुण्ड (Cisterna Magna) से यह द्रव

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

समस्त मस्तिष्कके भागोंको तर करता रहता है। अधोजाल-तानिका देशोंसे यह द्रव जाल-तानिका-अङ्कुर (Villi of the Arachnoid mater) के द्वारा अवशोषित होता रहता है। यह निरन्तर उत्पन्न होता तथा निरन्तर ही रक्तमें मिलता रहता है। उपर्युक्त बहावके क्रमके साथ-साथ हर रन्ध्रमें यह उत्पन्न भी होता रहता है, जो कि उसीमें मिश्रित होता चला जाता है। सब रन्ध्र एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं तथा सुषुम्ना-रन्ध्र (The Central Canal of the Spinal cord) के सिलसिलेमें विद्यमान हैं। प्रत्येक पार्श्वरन्ध्र तीन श्रृंगों (The Anterior, Posterior and Inferior Horns or Carnua) में फैला है। प्रत्येक पार्श्वरन्ध्रकी दीवाल तथा छतमें रक्तक-जालिकाएँ (Choroid Plexuses) होती हैं। ये रक्तक-जालिकाएँ (Choroid Plexuses) तीसरे तथा चौथे रन्ध्रकी छतोंमें भी विद्यमान हैं। ये रक्तक-जालिकाएँ (Choroid Plexuses) मस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) की उत्पत्तिमें बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इस द्रवसे सब अधोजाल-तानिका-स्थल, मस्तिष्कके सब रन्ध्र तथा सुषुम्ना-रन्ध्र भरे रहते हैं, जिससे मस्तिष्क तथा सुषुम्नाकी सुरक्षा रहती है। प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) निरन्तर उत्पन्न होता रहता है तथा सामान्यतः जिस शीघ्रतासे उत्पन्न होता रहता है, उतनी ही शीघ्रतासे पुनः अवशोषित होता रहता है। यह क्रिया सदैव चलती रहती है।

प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) के विषयमें शास्त्रोंमें ठीक उपर्युक्त शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy) तथा शरीर-शास्त्र (Physiology) के समान ही विवरण प्राप्त होता है।

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः।
मेरुशृङ्गे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः॥
वर्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः।
ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा च वै॥
इडामार्गेण पुष्ट्यर्थं याति मन्दाकिनीजलम्।
पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम्॥
एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थित.।
अपरः शुद्धदुग्धाभो हठकर्षितमण्डलः।
मध्यमार्गेण सृष्ट्यर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः॥
मेरुमूले स्थितः सूर्यः कलाद्वादशसंयुतः।
दक्षिणे पथि रश्मिभिर्वहत्यूर्ध्वं प्रजापतिः॥
पीयूषरश्मिनिर्यासं धातूंश्च ग्रसति ध्रुवम्।
समीरमण्डले सूर्यो भ्रमते सर्वविग्रहे॥
एषा सूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि।
वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारकारकः॥
(शि० सं० २। ६–१२)

शास्त्रोंमें शरीरको ब्रह्माण्ड कहा गया है, जिसमें विश्वके समस्त देश विद्यमान हैं। तीनों लोकोंमें जो कुछ है वह सब इस शरीरमें स्थित है। सुमेरु पर्वतके समान ही शरीरके मध्यमें मेरु सुषुम्ना (Spinal Cord) है, जिसके ऊपर आठ कलाओंवाला अर्ध-चन्द्र स्थित है, जिसका मुख नीचेकी तरफको है तथा जिसमें दिन-रात निरन्तर अमृतकी वर्षा होती रहती है। यह विवरण ठीक ऊपर बताये हुए विवरणके ही समान है। उपर्युक्त कथित रन्ध्रोंके भाग जिनसे प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebrospinal fluid) उत्पन्न होकर निकलता रहता है, अर्धचन्द्राकार हैं तथा संख्यामें चार हैं। ये रन्ध्र निम्नलिखित आठ भागोंमें विभक्त हैं, जिन्हें शास्त्रोंमें अष्टकला कहा गया है। चार रन्ध्रोंमेंसे दो पार्श्व-रन्ध्रों (Two Lateral Ventricles) के अलग तीन-तीन विभाग (The Anterior, Posterior and Inferior Horns) हो जाते हैं, जो सब मिलकर आठ भाग हुए। ये सब अधोमुखी, जैसा कि शास्त्रोंमें लिखा है, होते हैं तथा निरन्तर प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रवको उत्पन्न करते तथा बहाते रहते हैं। इस प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) के जिसको शिव-संहितामें अमृत नामसे सम्बोधित किया गया है, (शिव-संहिता २। ५। ६) दो भाग हो जाते हैं। एक भागके द्वारा समस्त शरीर अर्थात् मस्तिष्क और सुषुम्ना आदिकी रक्षा होती है, दूसरा भाग सुषुम्ना-रन्ध्रमें प्रवेश करता है। तथा वहाँसे फिर वापिस होकर निकलता है। (शिव-संहिता २। १०-११) यह अमृत जैसे-जैसे उत्पन्न होता रहता है, वैसे-वैसे ही अवशोषित भी होता रहता है। मेरु (Spinal Cord) के मूल भागपर बारह कलावाला सूर्य विद्यमान है, जो इस अमृत अथवा प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रवको किरण-शक्तिसे पान करता रहता है, जो समस्त शरीरमें भ्रमण करता रहता है। (शिव-संहिता २। १०-११) इस प्रकारसे शिव-संहिताका यह कथन स्पष्टरूपसे व्यक्त करता है

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

कि यह प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) एक प्रक्रियासे रक्तके भीतर मिश्रित होकर समस्त शरीरमें भ्रमण करता रहता है ।

भारतीय शास्त्रोंमें हमें केवल इन सबका रचनात्मक तथा क्रियात्मक ज्ञान ही नहीं प्राप्त होता, बल्कि इन सबको नियन्त्रित करके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करनेकी विधियाँ भी प्राप्त होती हैं। भिन्न-भिन्न केन्द्रोंपर संयम करनेसे अनेक अलौकिक शक्तियाँ उदय होती हैं। उदाहरणस्वरूप प्रमस्तिष्कीय-मेरु-द्रव (Cerebro-spinal Fluid) को विशिष्ट क्रियाके द्वारा जिह्वासे पान करके योगी मृत्युको जीत लेता है । रोगमुक्त होता है। अनेक शक्तियाँ प्राप्त करता है । अभ्यास बढ़ाते चलनेसे अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त करता है । कामदेवके समान सुन्दर हो जाता है । भूख, प्यास, निद्रा और मूर्छा आदि उसे नहीं सताती ।

सरसं यः पिबेद्वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः ।
नश्यन्ति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामयाः ॥
रसनामूर्ध्वगां कृत्वा यश्चन्द्रे सलिलं पिबेत् ।
मासमात्रेण योगीन्द्रो मृत्युं जयति निश्चितम् ॥
राजदन्तबिलं गाढं सम्पीड्य विधिना पिबेत् ।
ध्यात्वा कुण्डलिनीं देवीं षण्मासेन कविर्भवेत् ॥
काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं संध्ययोरुभयोरपि ।
कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शान्तये ॥
(शिवसंहिता ३ । ८५-८८)

× × ×

दन्तैर्दन्तान्समापीड्य पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
ऊर्ध्वजिह्वः सुमेधावी मृत्युं जयति सोऽचिरात् ॥
(शि० सं० ३ । ९१)

× × ×

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धं यदि तिष्ठति ।
क्षणेन मुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः ॥
रसनां प्राणसंयुक्तां पीड्यमानां विचिन्तयेत् ।
न तस्य जायते मृत्युः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।
न क्षुधा न तृषा निद्रा नैव मूर्च्छा प्रजायते ॥
(शि० सं० ३ । ९३-९५)

स्वतःसंचालित स्नायुमण्डल
(Autonomic Nervous System)

इस स्वतःसंचालित स्नायुमण्डलका आधार मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड (Vertebral Column) में स्थित वज्रा, चित्रणी आदि नाड़ियोंसहित सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) है । इस मस्तिष्क-मेरु-धुरी (Cerebro-spinal axis) से ही सम्पूर्ण स्वतःसंचालित स्नायुमण्डल सम्बन्धित है। इसमें बहुत-से चक्र तथा पद्म स्थित हैं। चित्रणी नाड़ी इन सब चक्रों तथा पद्मोंमेंसे होकर गुजरती है । यह तो आधुनिक शरीरविज्ञान (Physiology) के समान ही है । आधुनिक शरीरविज्ञानके अनुसार सुषुम्ना (Spinal Cord) के दोनों तरफ नीचेसे ऊपरतक समानान्तर स्नायुकोषोंके गुच्छोंकी एक जंजीर (Chain of Ganglia)-सी है जिनमें-से निकलकर स्नायुतन्तु सम्पूर्ण आन्तरिक अङ्गोंमें जाते हैं । यह स्नायुमण्डल सभी भीतरी अङ्गोंका संचालन एवं नियन्त्रण करता है, जिसके लिये यह किसी बाह्य उत्तेजनाकी अपेक्षा नहीं रखता है । यह हमारी अनैच्छिक क्रियाओंसे सम्बन्धित है । इसी कारण इसे स्वतःसंचालित स्नायुमण्डल (Autonomic Nervous System) कहते हैं। संगीत-रत्नाकर (स्वराध्याय पिण्डोत्पत्ति-प्रकरण १४४-१५६) में मेरुदण्ड-रज्जुमें स्थित सुषुम्नाके दोनों तरफ समानान्तर स्नायुकोषोंके गुच्छोंकी जंजीरमेंसे बायीं ओरकी जंजीरको इडा तथा दाहिनी ओरकी जंजीरको पिङ्गला कहा है। अतः सुषुम्नाके बायीं ओर इडा तथा दाहिनी ओर पिङ्गलाकी स्थिति मानी है ।

इडानाम्नी तु या नाडी वाममार्गे व्यवस्थिता ।
सुषुम्णां सा समाश्लिष्य दक्षनासःपुटे गता ॥
पिङ्गला नाम या नाडी दक्षमार्गे व्यवस्थिता ।
मध्यनाडीं समाश्लिष्य वामनासापुटे गता ॥
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत् खलु ।
षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः ॥
(शिव-संहिता २ । २५-२७)

योग-उपनिषदों तथा अन्य सब योगशास्त्रोंमें इडा तथा पिंगला नाड़ियोंको क्रमशः सुषुम्नाके बायें तथा दायें ही स्थित बताया है । इस प्रकारसे इन तीन नाड़ियोंके द्वारा ही मुख्य रूपसे यह स्वतःसंचालित स्नायुमण्डल निर्मित है । इनमेंसे ही नाड़ियाँ निकलकर सब आन्तरिक अवयवोंमें जाती हैं । उपर्युक्त विवरणसे यह नहीं समझना चाहिये कि इसका सम्बन्ध केन्द्रीय स्नायुमण्डल (Central Nervous System) से बिल्कुल ही नहीं है । केन्द्रीय स्नायुमण्डल काफी हदतक इसकी क्रियापर अपना असर डाल सकता है, किंतु साधारणतः

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

इन दोनोंकी क्रियाएँ अलग-अलग स्वतन्त्ररूपसे चलती रहती हैं।

स्वतःसंचालित स्नायुमण्डल (Autonomic Nervous System) के दो मुख्य विभाग हैं । १–सहानुभूतिक (Sympathetic), २–उपसहानुभूतिक (Para-sympathetic) । सहानुभूतिक स्नायुमण्डलको थौरेसिको लम्बर मण्डल (Thoracico lumbor System) कहा जाता है तथा उपसहानुभूतिक स्नायुमण्डलको क्रेनियो-सैक्रल मण्डल (Cranio-sacral system) कहते हैं। इन दोनोंसे ही स्नायुसूत्र सब आन्तरिक अवयवोंमें जाते हैं। इन दोनोंकी प्रतिक्रिया एक-दूसरेसे विरोधी होती है। दोनोंके संतुलनपर ही स्वतःसंचालित स्नायुमण्डलकी क्रियाएँ आधारित हैं।

योगीके लिये तो इसका ज्ञान अनिवार्य ही है; क्योंकि उसे समस्त भीतरी अङ्गोंकी क्रियाओंपर नियन्त्रण करना पड़ता है। सब आन्तारक अङ्गोंको जिस प्रकारसे योगी क्रियाशील करना चाहे, कर सकता है। साधक इनका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके ही योगसाधनकी तरफ चलता है। अतः सब योगशास्त्रोंमें इनका विवेचन स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है।

उपसहानुभूतिक मण्डल (Para-sympathetic system) के त्रिक् भाग (Sacral part) के द्वारा ही मलत्याग, मूत्रत्याग तथा वीर्यस्खलन होता है। इस त्रिक् भागसे निकलनेवाली २, ३, ४; नाड़ियोंके द्वारा ये तीनों क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। योगशिखोपनिषद्में इन तीनों नाड़ियोंके नाम क्रमशः कुहू, वारुणी तथा चित्रा हैं। संगीतरत्नाकरमें कुहू मेरुदण्ड-रज्जुके बायीं ओर त्रिक् जालक (Sacral plexus) की प्यूडिक नाड़ी (Pudic Nerve) बतायी गयी है। गान्धारीको बायीं जंजीर इडाके पृष्ठ भागमें बायीं आँखसे लेकर बायें पैरतक स्थित बताया है। ग्रीवा-जालक (Cervical Plexus) की कुछ नाड़ियाँ मेरु-दण्ड-रज्जुमेंसे होकर नीचेकी त्रिक् जालक (Sacral Plexus) की गृध्रसी-तन्त्रिका (Sciatic-Nerve) से मिलती हैं। हस्तजिह्वा बायीं जंजीर इडाके सम्मुख बायीं आँखके कोनेसे मेरु-दण्ड-रज्जुमेंसे होकर नीचे बायें पैरके अँगूठेतक फैली हुई है। सुषुम्नाके दाहिनी ओर सरस्वती नाड़ी जिह्वामें चली गयी है, जिसे कि ग्रीवा-जालक (Cervical Plexus) की अधोजिह्व तन्त्रिका (Hypo-glossal-Nerve) कहा जा सकता है। दाहिनी जंजीर पिंगलाके पृष्ठभागमें पूषा दाहिनी आँखके कोनेके नीचेसे उदरतक चली गयी है। इसे ग्रीवा और कटि नाड़ियोंसे सम्बन्धित तार कहा जा सकता है। पयस्विनी पूषा और सरस्वतीके मध्यमें स्थित है। इसे ग्रीवा-जालक (Cervical plexus) की दाहिनी अलिन्द-शाखा (Auricular Branch) कहा जा सकता है। शङ्खिनी गान्धारी और सरस्वतीके मध्य ग्रीवाजालक (Cervical Plexus) के बायें अलिन्द शाखा (Auricular Branch) है। दाहिनी जंजीरके अग्र भागमें दाहिने अँगूठेसे दायें पैरतक यशस्विनी स्थित है। त्रिक् जालक (Sacral Plexus) नाड़ी कुहू और यशस्विनीके मध्यमें स्थित है। इसकी शाखाएँ नीचेके धड़ और अङ्गोंमें फैली हुई हैं। कटि-जालक (Lumbar Plexus) नाड़ियाँ विश्वोदरा कुहू और हस्तिजिह्वाके मध्यमें स्थित हैं। नीचेके धड़ और अङ्गोंमें इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं। अनुत्रिक नाड़ियाँ (Coccygeal Nerves) अलम्बुषा त्रिक कशेरुका (Sacral Vertebrae) से होकर जननमूत्र अङ्गोंतक फैली हैं।

नाडीजाल

नाड़ियोंका विशद विवेचन हमें प्रायः सब योगग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। सबने सुषुम्ना नाड़ीको ही मुख्य माना है तथा इस मुख्य नाड़ीके दोनों तरफ बायें तथा दायें स्थित इडा और पिंगलाका महत्त्व भी प्रदर्शित किया है, जिसका विवेचन किया जा चुका है। इन तीन नाड़ियोंके आधारपर ही अन्य सब नाड़ियोंकी स्थिति बतायी गयी है।

दर्शनोपनिषद्में नाड़ियोंकी स्थितिका विवरण निम्नलिखित है—

(योगमनोविज्ञान–३५५ पृष्ठ)–

सुषुम्नाया इडा सव्ये दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥
सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्ना पार्श्वयोः स्थिते ।
गान्धारा हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपूर्वयोः ॥
पूषा यशस्विनी चैव पिङ्गला पृष्ठपूर्वयोः ।
कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरा स्थिता ॥
यशस्विन्याः कुहोर्मध्ये वरुणा सुप्रतिष्ठिता ।
पूषायाश्च सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता यशस्विनी ॥
गान्धारायाः सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता च शङ्खिनी ।
अलम्बुषा स्थिता पायुपर्यन्तं कंदमध्यगा ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पूर्वभागे सुषुम्नाया राकायाः संस्थिता कुहूः ।
अधश्चोर्ध्वं स्थिता नाडी याम्यनासान्तमिष्यते ॥
इडा तु सव्यनासान्तं संस्थिता मुनिपुंगव ।
यशस्विनी च वामस्य पादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते ॥
पूषा वामाक्षिपर्यन्ता पिङ्गलायास्तु पृष्ठतः ।
पयस्विनी च याम्यस्य कर्णान्तं प्रोच्यते बुधैः ॥
सरस्वती तथा चोर्ध्वं गता जिह्वा तथा मुने ।
हस्तिजिह्वा तथा सव्यपादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते ॥
शङ्खिनी नाम या नाडी सव्यकर्णान्तमिष्यते ।
गान्धारा सव्यनेत्रान्ता प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः ॥
विश्वोदराभिधा नाडी कंदमध्ये व्यवस्थिता ।
(४ । १३–२३)

सुषुम्नाके बायें और दाहिने क्रमशः इडा और पिङ्गला स्थित हैं । सरस्वती और कुहू सुषुम्नाके अगल-बगल स्थित हैं । गान्धारा और हस्तिजिह्वा अग्रभागमें स्थित हैं । पिङ्गलाके पृष्ठ और अग्रभागमें पूषा और यशस्विनी स्थित हैं । कुहू और हस्तिजिह्वाके मध्यमें विश्वोदरा विद्यमान है । यशस्विनी और कुहूके मध्यमें वरुणा स्थित है । दर्शनोपनिषद् मूल ग्रन्थमें 'पूषायाश्च सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता यशस्विनी' इस प्रकारसे दिया है, जिसका अर्थ 'पूषा और सरस्वतीके मध्यमें यशस्विनी कही जाती है' किंतु हमको ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थलपर पयस्विनीकी जगह यशस्विनी अशुद्ध छप गया है । अतः यहाँपर हम यह कह सकते हैं कि पूषा और सरस्वतीके मध्यमें पयस्विनी है । गान्धारा और सरस्वतीके मध्यमें शङ्खिनी कही गयी है । कंदके मध्यमें गयी हुई अलम्बुषा गुदा तक स्थित है । पूर्णमासीके समान प्रकाशित सुषुम्नाके पूर्व भागमें कुहू स्थित है । यहाँपर सुषुम्ना स्पष्टरूपसे श्वेत बतायी गयी हुई मालूम पड़ती है । ऊपर और नीचे स्थित नाड़ी दायीं नासिकाके अग्रभाग तक चली जाती है । इडा बायें नाकके अन्ततक स्थित है । यशस्विनी बायें पैरके अंगूठेके अन्तिम भाग तक स्थित है । पूषा पिङ्गलाके पृष्ठभागमेंसे होकर बायीं आँख तक पहुँचती है । पयस्विनी दाहिने कानमें जाती है । इसी प्रकारसे सरस्वती जिह्वाके अग्रभागमें पहुँचती है और दाहिने पैरके अंगूठेके अन्त तक हस्तिजिह्वा जाती है । शङ्खिनी नामक नाड़ी दायें कानके अन्त तक जाती है । गान्धारा नाड़ीका अन्त दाहिने नेत्रमें होता है । विश्वोदरा नाड़ी कंदके मध्यमें स्थित है । दर्शनोपनिषद्में इन नाड़ियोंके देवताओंका भी विवेचन प्राप्त होता है । सुषुम्ना, इडा, पिङ्गला, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, अलम्बुषा, गान्धारा, पयस्विनी, विश्वोदरा, कुहू और शङ्खिनीके देवता क्रमशः शिव, हरि, ब्रह्मा, विराज, पूषन्, वायु, वरुण, सूर्य, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति, पावक (अग्नि), जठराग्नि और चन्द्रमा हैं ।

उपर्युक्त विवरणसे घ्राण-नाड़ियाँ (Olfactory Nerves); श्रवण-नाड़ियाँ (Auditory Nerves); दृष्टि-नाड़ियाँ (Optic Nerves) तथा हाइपोग्लोसल (Hypoglossal) आदि अन्य नाड़ियोंके नाम स्पष्टरूपसे मिलते हैं ।

डा० राखालदास रायजीने अपनी पुस्तक (Rational Exposition of Bharatiya Yoga Darshan, Page 99) में नाड़ियोंके आधुनिक शरीर-रचना-शास्त्रीय नाम निम्नलिखित प्रकारसे दिये हैं—

अलम्बुषाको अग्र रज्जुकामें स्थित ज्ञानवाही पूलिका (Sensory Fasciculus in the anterior Funiculus), कुहूको पश्च रज्जुकामें स्थित ज्ञानवाही पूलिका (Sensory Fasciculus in the posterior Funiculus), वरुणाको ऊर्ध्व हनु तथा अधो हनु नाड़ी (Maxillary of mandibular nerve), यशस्विनीको पार्श्व रज्जुमें ज्ञानवाही पूलिका (Sensory Fasciculus in the Lateral Funiculus), पिङ्गलाको दायीं तन्त्रिका सिरा (The right nervous terminale), पूषाको दृष्टि-नाड़ी (The Optic Nerve), पयस्विनीको प्रघ्राण-तन्त्रिका (Vestibular Nerve), सरस्वतीको अधोजिह्वा-तन्त्रिका (Hypoglossal or Lingual Nerve), शङ्खिनीको कर्णावर्त-तन्त्रिका (The Cochlear Nerve), गान्धाराको नेत्र-तन्त्रिका (The Opthalmic Nerve), इड़ाको बायीं तन्त्रिका सिरा (The left nervous terminale), हस्तिजिह्वाको जिह्वाग्रसनी तन्त्रिका-का ज्ञानवाही भाग (Sensory portion of the Glossopharyngeal Nerve) तथा विश्वोदराको वेगस तन्त्रिकाका ज्ञानवाही भाग (Sensory portion of the Vagus nerve) कहा है ।

जिन नाड़ियोंके नाम योग-शास्त्रोंमें मिलते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी नाड़ियाँ हैं, जिनकी संख्याका उल्लेख

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

विभिन्न प्रकारसे विभिन्न ग्रन्थोंमें मिलता है। सच तो यह है कि नाड़ियाँ ७२,००० वा ३००००० वा ३५०००० की संख्यामें ही नहीं हैं। ये तो अनन्त हैं, जो नाड़ियों तथा उपनाड़ियोंके रूपमें शरीरके एक-एक रोमकूपसे सम्बन्धित हैं। सम्पूर्ण स्थूल शरीरमें इन नाड़ियोंका जाल बिछा हुआ है। छोटे-से-छोटा स्थान भी इन नाड़ियोंसे रहित नहीं है। ये नाड़ियाँ स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकारकी हैं। कुछ इन्द्रियोंद्वारा दृष्टिगोचर होती हैं, कुछ ऐसी हैं जो इन्द्रियोंके द्वारा यन्त्रोंकी सहायतासे भी दृष्टिगोचर नहीं होती हैं। भौतिक विज्ञानको उन सूक्ष्म नाड़ियोंका ज्ञान नहीं है, किंतु योगियोंने उन सूक्ष्म नाड़ियोंके विषयमें भी ज्ञान प्राप्त किया था, जो कि योग-ग्रन्थोंसे स्पष्ट हो जाता है। सचमुचमें अभी तक हमारा वैज्ञानिक ज्ञान अधूरा है, जिसके द्वारा हमें अन्नमय कोष अर्थात् इस स्थूल शरीरके समस्त सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतम अङ्गोंका भी पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं है। अन्य सूक्ष्म जगद्विषयक तथा आध्यात्मिक ज्ञानकी तो चर्चा करना बेकार ही है। वे बेचारे अपनी अनभिज्ञताके कारण सूक्ष्म विषयोंका अस्तित्व ही अस्वीकार कर बैठते हैं। योगी लोगोंने तो अनेकों इन्द्रियातीत विषयोंका ज्ञान स्वयं प्राप्त कर दूसरोंको भी प्रदान किया है। समाधि-प्रज्ञा-प्रकाशमें कुछ भी अज्ञात नहीं रह जाता है। फिर साधारण स्थूल-शरीर-अवयव-सम्बन्धित ज्ञानकी तो बात ही क्या है। आज सबका परम पावन कर्तव्य हो जाता है कि अपने उस प्राचीन ज्ञानको शास्त्रोंके गहन अध्ययन, मनन एवं उनके द्वारा बताये मार्ग-पर चलकर, प्राप्त कर उस ज्ञानप्रकाशकी किरणोंको समस्त विश्वको प्रदान कर दुःखित, पीड़ित तथा अज्ञानी प्राणियोंके दुःख, पीड़ा तथा अज्ञानको नष्ट कर विश्वका कल्याण करें। मेरा पूर्ण विश्वास है कि बिना शास्त्रकथित योग-साधनाके मार्गपर चले विश्वशान्ति एवं कल्याण प्राप्त नहीं हो सकता।

कलियुगमें कल्याणका उपाय

(लेखक—श्रीसत्यस्वरूपजी माथुर)

जिस युगमें जिन कर्मोंके करनेकी आज्ञा हमारे शास्त्रोंने दी है, उन कर्मोंको यदि उन युगोंमें किया जाता है तो अवश्य ही लाभ होता है। यह सिद्धान्त हमारे त्रिकालदर्शी पूज्य ऋषियोंका है जिसमें संदेहको कोई गुंजाइश नहीं।

वर्तमान युगके लोगोंको यह सिद्धान्त इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि जैसे ऋतुएँ अपने प्रभावको सर्दी-गरमी और वर्षाके रूपमें दिखलाती हैं, उसी प्रकार युग भी अपने रूपको प्रकट करते हैं—जाड़ेकी ऋतुमें हम चाहे जितने गरम कपड़े पहनें तथा अग्नि और आधुनिक साधनोंका कितना भी सहारा लें, किंतु जाड़ेकी ऋतु अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रह सकती—इसी प्रकार कलि-युगमें अन्य युगोंमें करनेयोग्य कर्मोंको करें तो उतना लाभ नहीं होगा जितना कि होना चाहिये—जैसे जाड़े-की ऋतुमें अग्नि इत्यादिकी सहायतासे थोड़ी देरको जाड़ा मिट जायगा, किंतु फिर जाड़ा लगने ही लगेगा।

यह तो ऋतुओंकी पहचानका उदाहरण है, अब युगकी पहचान किस प्रकार की जाय यह एक प्रश्न है! और इसका सरल उत्तर यह है कि युगकी पहचान संसारके मनुष्योंके आचार-विचारसे होती है, जब पृथ्वीके अधिकांश मानव जिन आचार-विचारोंमें रत हों, उन आचार-विचारोंको शास्त्रोंसे मिलान कर लो। बस, समझमें आ जायगा कि यह अमुक युग है।

वर्तमान युगके अधिकांश व्यक्तियोंके आचार-विचार श्रीरामचरितमानसमें वर्णित कलियुगके प्रसंगसे बिल्कुल मिलते हैं। यह प्रसंग काकभुशुण्डि-गरुड़-संवादमें है जो उत्तरकाण्ड रामचरितमानसमें है। रामचरितमानसके प्रेमी सज्जन तो इस संवादसे भली प्रकार परिचित होंगे तथा वर्तमान युगको लगभग सभी भारतवासी कलियुगके नामसे ही पुकारते हैं। अतः श्रीकाकभुशुण्डिजीके आँखों-देखे कलियुग-के हालको मैं यहाँ निवेदन नहीं कर रहा हूँ। इस निवेदनमें तो केवल कलियुगसे कल्याणका उपाय ढूँढ़नेका प्रयत्न है जो इस प्रकार है—

उत्तरकाण्ड रामचरितमानसमें श्रीकाकभुशुण्डिजीने कलियुगका हाल बताकर इसमें कल्याणका उपाय भी बतानेकी कृपा कर दी अर्थात् अन्तमें श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

दोहा—प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥
(१०३ (ख)

अर्थात् धर्मके चार पद हैं, किंतु कलियुगमें केवल एककी साधना आवश्यक है। वह धर्म है दान। दान जिस किसी भी तरीकेसे दिया जाय, कलियुगमें वह कल्याण ही करेगा, किंतु कलियुगके लोगोंके लिये श्रीकाकभुशुण्डिजीने यह भी कहा है—

'तपसी धनवंत दरिद्र गृही'

तथा—

'बिन अन्न दुखी सब लोग मरैं'

अर्थात् कलियुगमें गृहस्थ तो दरिद्र होंगे और अन्नाभावमें सब लोग दुखी होंगे तथा मरेंगे। अतः शंका यह उत्पन्न हो जाती है कि 'जब अधिकांश लोग दरिद्र और दुखी होंगे तो वे दान कहाँसे देंगे। दानकी वस्तुओंका विवरण आम तौरपर यह है कि दानमें रुपया, पैसा, सोना-चाँदी, अन्न-वस्त्र तथा ओषधि और हाथी-घोड़े, रथादि दिये जाते हैं। इन वस्तुओंमेंसे किसी एकको भी देनेकी सामर्थ्य वर्तमान युगकी महँगाईसे पीड़ित अधिकांश जनताकी नहीं है। इसका अर्थ यह निकला कि वर्तमान युगके अधिकांश व्यक्ति दान करके अपना कल्याण ही नहीं कर सकते यह तो काकभुशुण्डिजीकी तरकीब समझमें नहीं आयी।' यह प्रश्न मेरे भी मस्तिष्कमें उत्पन्न हुआ, किंतु मैंने सोचा कि श्रीकाकभुशुण्डिजी तो महान् थे, उनकी वाणी असत्य तो हो ही नहीं सकती, यह तो अपनी विचारशक्तिकी कमीका कारण है। अतः उपर्युक्त दोहापर पुनः विचार किया और भगवान्‌की कृपासे सही समाधान भी सामने आ गया, जो इस प्रकार है—

उपर्युक्त दोहामें जुड़े शब्द येन केन विधिका अर्थ है जिस किसी भी प्रकार जो दिया जाय वही दान है। और उससे कल्याण अवश्यम्भावी है। दानकी उपर्युक्त वस्तुएँ तो प्रत्येकको उपलब्ध नहीं, किंतु रामचरितमानसके अनुसार और भी कुछ है जिसे दिया जा सकता है और उसका तुरंत फल भी मिल सकता है। वर्तमान भौतिक विज्ञानके विद्वान् तुरंत फल मिलनेकी बातपर तो विश्वास करते हैं, शेष किसीपर नहीं। अतः तुरंत फल देनेवाले दानोंकी परिभाषा इस प्रकार है—अभयदान, विद्यादान, आरोग्यदान, आदरदान, मानदान, जलदान, फलदान, ज्ञानदान तथा श्रमदान। इनमें कुछ उपकरण ऐसे हैं जिन्हें व्यक्तिविशेष ही दे सकते हैं, जैसे अभयदान देनेके लिये शक्तिमान् होना चाहिये। विद्यादान देनेके लिये पढ़ा-लिखा और आरोग्यदान देनेके लिये वैद्य या डाक्टर, किंतु अन्य उपकरणोंको सभी प्रयोगमें ला सकते हैं। उदाहरणस्वरूप आदर-दान और मान-दान तथा श्रमदान—ये सभी ऐसे दान हैं कि इनमें कुछ भी नहीं लगता। केवल रसनाको हिलाना पड़ता है। बस, दान हो गया और उसका तुरंत फल भी मिल गया। आपके सामने कोई भी व्यक्ति आता है और आप उसका आदर कर देते हैं तो वह व्यक्ति आपका भी आदर अवश्य करेगा। यदि आप किसीको मान देते हैं तो उसके द्वारा आपको भी मान मिल जायगा। तात्पर्य यह है कि इन दानोंका फल तुरंत मिल जाता है और इस प्रकारके दान सभी कलियुगी व्यक्ति कर सकते हैं।

इन दानोंका उल्लेख तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी किया है। उदाहरणस्वरूप देखिये निम्न चौपाइयाँ—

दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥

यह चौपाई बालकाण्डके दोहा ३३८ के आगे है, जब माता जानकीजी पालकीमें सवार हो गयीं, तब महाराज दशरथने समस्त ब्राह्मणोंको बुलाया। इन ब्राह्मणोंको वस्तुओंका दान तो वे पहले ही कर चुके थे; किंतु वस्तुओंके दानसे स्वाभिमानी ब्राह्मण थोड़े ही तृप्त हो सकता है, उसको तो मान-दान भी चाहिये। अतः दशरथजीने चलते समय सभी ब्राह्मणोंको मान-दान देकर परिपूर्ण कर दिया।

अब दूसरी चौपाई बालकाण्डके दोहा ३२० से आगेकी देखिये—

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥

विनययुक्त सुन्दर वाणीसे मान-दान करके श्रीजनकजीने सभी बरातियोंको सम्मानित किया। तीसरी चौपाई बालकाण्डके ३५१ दोहाके आगेकी है। बरात अयोध्या आ जानेके पश्चात् श्रीवशिष्ठजीके आज्ञानुसार ब्राह्मण-भोजन कराया गया और इसके पश्चात् दशरथजीने ब्राह्मणोंको आदर-दानसे प्रसन्न कर दिया—

आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

जिस समय भगवान् राम सीताजी और लक्ष्मणजीसहित वन जानेको द्वारसे निकलकर खड़े हुए तो प्रजाके

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

सभी लोगोंकी भीड़ देखी; सब लोग दुखी थे । अतः भगवान् रामने अन्य लोगोंको प्रियवचन कहकर समझाया और इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाया तथा—

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान बिनय बस कीन्हे ॥

ब्राह्मणोंको वरषासन देनेके पश्चात् उन्हें आदर-दान भी दिया । अब उस समाजमें याचक और मित्रवर्ग रह गये तो भगवान्ने याचकोंको दानमानसे संतुष्ट किया तथा मित्रवर्गको पवित्र प्रेमसे । देखिये अयोध्याकाण्डके ७९ संख्यक दोहासे आगे—

जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥

उपर्युक्त चौपाइयोंसे आदर और मान दान देनेकी आवश्यकता सिद्ध हो जाती है । ये उपकरण भी दानकी संज्ञामें हैं और इनके अतिरिक्त अन्य आवश्यक खाने-पीनेकी छोटी-छोटी वस्तुएँ भी हैं—जैसे हल्दी-धनिया-नमक-मिर्चा-चीनी, चाय-पान आदि । इन वस्तुओंके लेन-देनकी आवश्यकता प्रायः समय-असमय पड़ जाती है और दान यदि आवश्यकतापर दिया जाय तो सोनेमें सुगन्ध है; बल्कि मैं तो यह कहूँगा, कोई वस्तु किसीको उसकी आवश्यकतापर ही दी जाय, तभी वास्तवमें वह दान कहलायगी, अन्यथा अनावश्यक किसीको कुछ भी दे डालो तो उससे कोई विशेष लाभ नहीं और न उसे वस्तुतः दान कहा ही जायगा ।

उपर्युक्त छोटी-छोटी वस्तुएँ भी कभी-कभी महान् दानका फल दे डालती हैं । उदाहरणस्वरूप आपके पड़ोसीके रात्रिके समय ऐसे अतिथि आते हैं जो चाय पीनेके आदी हैं—किंतु आपके पड़ोसीके पास चीनी नहीं है । चीनी कन्ट्रोलकी वस्तु है । बाज़ार बंद हो चुका । इसलिये कालेबाज़ारसे भी नहीं मिल सकती । आपके पास यदि चीनी है तो आप उसे चायके लिये दे दीजिये । यह दान आपका महान् हो गया और इसका फल देनेके लिये आपका पड़ोसी अवसरकी ताकमें रहेगा और कभी समय आनेपर इसका चौगुना तो चुकाकर ही देगा । एवं तुरंत फल मिलनेमें भी देर नहीं । आपका पड़ोसी जब चाय तैयार कर अपने अतिथिको देगा तो आपको भी अवश्य एक कप चाय पीनेको कह ही देगा । तात्पर्य यह है कि आपको दानका फल तुरंत मिल गया ।

वस्तुओंके दानमें पात्र-कुपात्रका भी बन्धन हमारे शास्त्रोंने रख दिया है; किंतु आदर-मान आदि दानोंमें जिनमें कि एक भी पैसा खर्च नहीं होता—पात्र-कुपात्रका भी कोई ध्यान रखनेकी आवश्यकता नहीं; कारण कि संसारके सभी स्त्री-पुरुष आदर और मानके याचक ही मिलेंगे; अतः आप इन्हें दिल खोलकर आदर एवं मानदान दीजिये और तुरंत फल प्राप्त कीजिये । दूसरे शब्दोंमें आप इस घोर कलिकालमें अपना कल्याण इस प्रकार कर सकते हैं । यह नुसखा हमारे महान् पूज्य भक्तशिरोमणि महात्मा श्रीकाकभुशुण्डिजीका अनुभूत है जो कदापि असत्य सिद्ध नहीं होगा । 'बोलो सियावर रामचन्द्रकी जय'

भगवत्कृपापर दीनका अधिकार

भय मत करो, न साहस छोड़ो, रक्खो प्रभुपर दृढ़ विश्वास ।
प्रभुकी कृपा सहज कर देगी सब बाधा-विघ्नोंका नाश ॥
करते रहो सदा श्रद्धासे प्रभुके ही प्रीत्यर्थ प्रयास ।
जा पहुँचोगे सहज शीघ्रतम परम लक्ष्य प्रभुके ही पास ॥
भगवत्कृपा दीनका धन है, जन्मसिद्ध उसपर अधिकार ।
नहीं योग्यताकी आवश्यकता, नहीं देश-कुल-धर्म-विचार ॥
नहीं प्रश्न अधिकारीका कुछ, नहीं शर्त कुछ, नहीं करार ।
हो विश्वास परम दृढ़ केवल दीनबन्धुपर बिना विकार ॥

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

ऋण-शोध

[सच्ची कहानी केवल नाम बदले हुए]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

'अवधेसके द्वारें सकारें गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे'

अरुणशिखाकी पहली ध्वनि सुनते ही शय्या त्याग कर, शौच स्नानादिसे निवृत्त हो, ऊनी वस्त्रमें भगवत्-स्तोत्रोंकी पुस्तकको बाँध, उसे बगलमें दबा, हाथमें आचमनी-समेत जलपूर्ण पंचपात्र लेकर, पादुकाएँ पहने बाबाजी नित्य उपर्युक्त पदको गुनगुनाते हुए मन्दिरमें भगवान्‌की पूजा करने जाया करते थे—जमीदारजीके भवनके सामने होकर ।

मन्दिरमें पूजा बड़े ही भक्ति-भावसे करते । पाठ करते समय—'**कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्**' इस ध्यानको ऊँची ध्वनिसे बड़े प्रेमके साथ बोलते थे । गाँवके सब बालक एकत्र हो जाते और वे भी इस ध्यानके श्लोकको एक साथ जोर-जोरसे बोलते थे । पूरा ध्यान ही उन्हें याद हो गया था, जिसे वे खेल-खेलमें बोलते जाते थे । बाबाजी जब देखते तो प्रसन्न होते । सोचते—'आज भारतवर्षमें बालकोंके सामने धार्मिक प्रदर्शन होनेकी बड़ी ही जरूरत है, ताकि वह स्मृति उनके मस्तिष्कमें आजन्म बनी रहे और वे प्रेमसहित धार्मिक जीवन बितावें । परंतु खेदकी बात है कि आजके युगमें इसकी बहुत कम आवश्यकता समझी जा रही है । बचपनमें ही बालक गलत रास्तेपर लग जाते हैं ।'

लौटते समय बाबाजी जमीदार प्रभुदयालजीके पास बैठकर चिलम पीते हुए मानसकी चौपाइयोंके अर्थ-अर्थान्तरपर चर्चा करते । एक दिन बोले—'कानूनगो ! तुम्हारे भवानीको तो समझाओ । यह सुजानसिंहसे बड़ी दोस्ती गाँठे हुए है । मैं कहता हूँ कि वह दुर्गुणोंका पुतला है । एक दिन उससे भारी धोखा खायगा यह ।'

'बाबाजी ! मैं क्या करूँ ! वह मेरी मानता नहीं । सयाने बेटेसे कुछ भला-बुरा कहना भी उचित नहीं है । वह तो सलाह लेने योग्य माना गया है । इस दोस्तीके दुष्परिणामोंको सोच-सोचकर मैं भी मन-ही-मन बड़ा दुखी होता रहता हूँ ।'

भवानीदयालकी मित्रता आजसे नहीं, कुछ वर्षोंसे खूब अच्छी तरह सुजानसिंहके साथ निभ रही है, ऐसी कि जिसे देखकर लोग कहा करते हैं—'दुनियामें दोस्त और दोस्ती हो तो ऐसी हो, मित्रताका आदर्श इनसे सीखने-जैसा है ।'

× × ×

सुजानसिंह भरेपूरे घरका मालिक, धनी, खेती एवं बागबगीचेका स्वामी है । मिष्टभाषी, व्यवहारकुशल और चतुर व्यक्ति । उसकी साख उस क्षेत्रमें चारों ओर फैली हुई थी, जिससे उसके नामपर हजारों रुपये उधार मिल जानेमें कभी किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं आती थी । जमीनका लगान, सिंचाई आदि सरकारी कर वह सबसे प्रथम तहसीलमें जमा कराकर रसीद ले लिया करता था । उसकी प्रतिष्ठा, लेन-देनकी शुद्धता, सद्व्यवहार और ईमानदारीके विषयमें किसीको कोई संदेह होने ही क्यों लगा । गरीबोंके सहायक स्वच्छ श्वेत पोशाकवाले सुजानसिंहकी सूरतमें ऐसा जादू था कि एक बार जो उससे मिलता, वही उसकी ओर आकर्षित हो जाता था ।

एक बार ग्रीष्म ऋतुकी दुपहरीमें जबकि अंशुमाली अपनी तप्त किरणोंसे प्राणियोंको तपा रहे थे, पक्षी भी झाड़ियोंकी झुरमुटमें ठंडी जगह बैठे गह तप्त समय बिता

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

रहे थे, ऐसे समय सुजानसिंह अपने गाढ़े मित्र भवानी-दयालके पास आया । तपन मिटाई । बोला—'प्रिय भवानी ! मुझे सरकारी लगानके ५००) रु० आज ही जमा करके रसीद प्राप्त करनी है । खलियानमें मेरी फसलके गेहूँ तैयार किये हुए रक्खे हैं । उन्हें बाजारकी मंडीमें ले जाकर बेचना है । बहुत-सा रुपया आ जायगा । तब तुम्हारे ५००) रु० शीघ्र दूँगा ।'

सुजानसिंह-जैसे ईमानदार और गाढ़े मित्र, जिसके लिये लोग कहा करते थे कि हुण्डियोंके भुगतानका समय टल सकता है, किंतु सुजानसिंहका वायदा एक घड़ी भी नहीं टल सकता, उसे इन्कार करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था । फौरन ५००) रु० दे दिये गये ।

दिन, सप्ताह, पक्ष, मास बीतते-बीतते पाँच वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी न रुपये माँगे गये और न दिये गये ।

(२)

मानवजीवनकी एक-एक घड़ी अलग-अलग रंग लाती है । मनुष्यके मनमें यदि अहर्निश भगवत्-स्मरण चलता रहे और सत्संगतिका सुयोग उसे निरन्तर मिलता रहे, तो उसका मन असद्विचारोंकी ओर जानेसे रुक सकनेमें समर्थ हो सकता है । यदि यह न हो तो मनुष्यकी वृत्तियाँ अवसर पाकर ऐसे दुष्कर्म और लोभ-लालचमें पड़ जाती हैं कि उसे भला-बुरा दिखायी नहीं देता और वह भलाईके बदले बुराई करनेमें भी नहीं चूकता—स्वार्थवश अन्धा हो जाता है । कहा है—

'यूँ तो कहनेको बशर बीना[1] भी है दाना[2] भी है ।
पर इससे बड़ा दुनियामें कोई दीवाना भी है ?'

सुजानसिंहके मानसके एक कोनेमें कुविचारके एक छोटेसे टुकड़ेका उदय हुआ—'यदि मैं ये ५००) रु० न लौटाऊँ तो ?' कई दिनोंतक इसका उत्थान-पतन होता रहा । परंतु एक दिन, जैसे बदलीका एक क्षुद्र टुकड़ा धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते सारे आकाशपर छाकर अन्धकार कर देता है, उसी प्रकार सुजानसिंहके अशुभ विचार पनपते-पनपते उसके मानसाकाशपर अन्धकार जमा बैठे । अन्तमें उसने निश्चय कर ही लिया कि—'अवश्य ही रुपये नहीं दूँगा ।'

एक दिन प्रातःकाल सुजानसिंहने भवानीदयालको अपने घर बुलाया । खुशी-खुशी भवानीदयाल, मित्रसे मिलनेकी उत्सुकतामें शीघ्र वहाँ पहुँचा । उसके मनमें यह उमंग थी कि शायद मित्रके घरपर आज कोई बड़ा उत्सव होगा । मित्रके साथ बड़ा आनन्द मनायेंगे ।

भवानीदयालके पहुँचते ही सुजानसिंहने उसकी तरफ इस तरह देखा, जैसे सिंह अपने शिकारकी ओर देखता है । उसकी बदली हुई त्योरियाँ देखकर भवानी-दयालको बड़ा आश्चर्य हुआ कि मित्रका आज यह कैसा अजीब हाल है ! आवभगत कुछ नहीं, मिष्ट वाणी एकदम कहाँ गयी ! वह स्नेहभरी चितवन, वह आदर-सत्कारका प्रीतिपूर्ण व्यवहार—सब आज कहाँ लुप्त हो गये !!

इन विचारोंका दौर भवानीदयालके मनमें चल ही रहा था कि सुजानसिंह एकाएक बोल उठा—'भवानी ! आज तुमको ब्याज समेत ५००) रु० पा लेनेकी रसीद मुझे लिख देनी होगी ?' एकान्त कक्षमें यह शब्द गूँजकर विलीन हो गये ।

'यह क्या कह रहे हो मित्र ? मैंने तुमसे कभी रुपये माँगे नहीं हैं । न आजतक किसीसे इन रुपयोंके बारेमें चर्चा की है । मुझे रुपये आनेकी कोई भी जल्दी नहीं है—जरूरत भी नहीं है । तुम्हारे पास आवें, और जब तुम देना चाहो तब देना । मैं तो यह भी कहता हूँ कि रुपये कभी माँगूँगा ही नहीं—लूँगा ही नहीं । फिर, आज तुम्हारा यह बदला हुआ भाव क्यों है ?'

'मैं और बातें नहीं सुनना चाहता । तुमको आज इसी वक्त इसी बैठकमें सूदसमेत ५००) रु०की पूरी रसीद लिख देनी होगी मुझे ।'

१ देखने योग्य । २ समझदार ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भवानीदयाल किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर बगलें झाँकने लगा।

इतनेमें ही सुजानसिंह गर्जकर बोला—'बोलो लिखते हो या यह शस्त्र उठाऊँ ?' यह कहते हुए उसका हाथ पास ही रक्खी हुई तलवारपर गया।

अब तो भवानीदयालका धीरज छूट गया। भयके मारे उसका सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। मुँहसे कोई शब्द नहीं निकला। आँखोंके कोये गीले होने लगे।

काँपते हुए हाथोंसे उसने कलम उठायी और पूरी रसीद लिख दी।

'इसकी मुझे जरूरत थी, लोगोंको दिखानेके लिये, ताकि मेरी साखमें बट्टा न लगे। समझे तुम ?' सुजान-सिंहने कुछ ठंडे भावसे मुस्कुराते हुए कहा।

दो गवाहोंको वहीं बुलाकर रसीदपर गवाही करवा ली गयी। भवानीदयालको गवाहोंके पूछनेपर भयभीत हृदयसे हाँ करनी पड़ी।

तभीसे भवानीदयालके मनमें एक भयंकर भय बैठ गया। वह घर-बाहरके सब काम तो करता; किंतु भयके साम्राज्यमें।

× × × ×

'मैंने कैसी चतुराई की। ५००) रु० किस खूबीसे बचा लिये ?' अन्तर्ध्वनि हुई—'अच्छा नहीं किया, भारी धोखा दिया—अपने अभिन्न, ईमानदार और सच्चे मित्रको।'

'ऐं, यह दूसरी बात दिलमें क्यों उठी, ध्वनिका आभास कैसे हुआ ? मेरे दो मन हैं क्या ?'

'क्या मैंने अपने गाढ़े मित्रको तुच्छ स्वार्थ-साधनके हेतु भारी धोखा दिया—बड़ा दुर्व्यवहार किया उसके साथ ?' मेरे मनसे ही पूछता हूँ।

विवेक बोला—'हाँ !'

धीरे-धीरे मनकी उथल-पुथल, विधि-निषेध, भलाई-बुराई, ईमानदारी-बेईमानी और रामचरितमानसमें मित्रता-का सत्प्रसङ्ग एवं अपनी ओरसे मित्रके साथ किया हुआ धोखा, तलवारपर हाथका बढ़ना, निर्दोष भोले मित्रका गिड़गिड़ाना—ये सभी सुजानसिंहके मन-मस्तिष्कमें रात-दिन उठते रहे, बैठते रहे और बेचैन करते रहे उसे। इन सबका प्रभाव उसके चेहरेपर दीखना भी स्वाभाविक ही था।

अतः लोग उसके चेहरेकी उदासीको देख-देखकर कहते—'ठाकुर साहिब ! आजकल आप किस रंजमें डूबे रहते हैं ? चेहरा फीका पड़ता जा रहा है। वह खुशहाली कहाँ काफूर हो गयी ?' सुजानसिंह सुनकर चुप हो जाया करता था।

(३)

भवानीदयालके मनोरम उद्यानमें एक साधुजी आकर ठहरे। उनका शिष्य श्रीरामचरितमानसकी चौपाइयाँ मधुर स्वरमें पढ़ता था और साधुजी उनके ऐसे-ऐसे अर्थ करते थे, जैसे बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी, भक्त और मानस-मर्मज्ञ भी नहीं कर पाते। किंतु साधुजी निरक्षर थे। यही तो श्रोताओंको आश्चर्य होता था। एक दिन उनमेंसे किसीने साधुजीसे यह रहस्य पूछ ही तो लिया।

साधुजी हँसकर बोले—सुनो भाई !

'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥'

मैं संतोंकी एक बड़ी जमातमें नौकर था। साधुओंकी लँगोटियाँ धोता, चौका-बरतन करता। पड़ावके स्थानको साफ-सुथरा करके गोबरसे लीपता और खूँटे गाड़कर तम्बू खड़े करता था। संतजन नित्य तुलसीकृत रामायण पढ़ने बैठते और भाँति-भाँतिसे अर्थ करते थे। मैं कामसे निपटकर कथा सुनने बैठ जाता और खूब ध्यानसे सुनता था। सुनते-सुनते मुझे सब कण्ठस्थ हो गया। मेरे साथियोंको यह शौक

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

नहीं था। किंतु 'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता' के अनुसार प्रभुकी मुझपर ही हरि-कथाका लाभ उठानेकी कृपा थी।

जमात बिखर गयी। मैं लघुमतिके अनुसार हरि-कथा कहता फिरता हूँ। भगवान् श्रीरघुनाथजीका चरित्र तो सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर मनुष्योंके महान् पापोंका नाश करनेवाला है—

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥
(रामरक्षास्तोत्र १)

ऐसी महामहिमावाले श्रीरामकी कथा कहनेका भला किसमें साहस हो सकता है; क्योंकि हरि-कथाओंका भी पार नहीं है;—

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहहिं सुनहिं समुझहिं श्रुति संता॥
(तुलसी)

किंतु प्रभु-कृपासे ही मैं उनका थोड़ा-बहुत गुणगान करनेसे अघाता नहीं हूँ। कहा है—

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
(तुलसी)

एक बड़ी बात यह है कि श्रीहनुमान्‌जीकी ऐसी दया है कि वे ही मुझे इस पुण्यकार्यसे कभी विरत नहीं होने देते।

करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद?
महावीरका यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।
(साकेत-गुप्तजी)

श्रोता साधुजीका उपदेश सुनकर प्रसन्न हुए। एक दिन भवानीदयालने साधुजीको अकेले पाकर उनसे ५००) की रसीदकी चर्चा कर दी। कहा—'यह मैंने त्याग और पुण्यका कार्य किया है।'

साधुजी हँसकर बोले—'यह तो तुम 'जबरदस्ताका ठेंगा सिरपर' और 'रपट पड़ेकी हरगंगा' वाले त्याग और पुण्यको समझे हुए हो। हम तो तुम्हारे त्याग-पुण्यकी प्रवृत्ति तब मानें जब हमारे गुरुजीका भंडारा १०००) रुपये लगाकर कर दो।'

'५००) रु० तो वे गये, १०००) और लगाऊँ, यह कहाँकी बुद्धिमानी!' किंतु फिर भी साधुजीके प्रस्तावने भवानीदयालके विचारोंमें उथल-पुथल जरूर मचा दी। सोचते-सोचते अन्तमें एक दिन हजार रुपयेके व्ययसे भंडारेकी रसोई करवा ही दी। परगनेके सभी भोजनार्थ आये। सुजानसिंहने भी आकर भोजन किया; पर चेहरा उदास था उसका।

(४)

सुजानसिंहके बड़े उद्यानमें घने वृक्ष-लताओंकी शीतल छाया देखकर साधुओंकी एक बड़ी जमात आकर ठहरी। उनको भोजन करानेका प्रस्ताव भी सुजानसिंहने मान लिया यह सोचकर कि उन ५००) रु०के व्ययसे जमातका भोजन करा देनेपर इस पुण्यसे मेरा पाप और मनस्ताप मिट जायगा।

भोजन बड़ी तृप्तिके साथ हो गया। भोजनोपरान्त सभीने जमातको विदा दी और संत-समागमका बखान करते हुए अपने-अपने घर लौटे।

× × ×

वह दौड़ता ही गया ऊबड़-खाबड़ जमीनमें गिरता-पड़ता चिल्लाता हुआ—'महाराज! ठहराओ हाथीको।' महन्तजी एवं सभी साधु पीछेकी ओर झाँके। 'अरे, यह तो सुजानसिंह दिखायी देता है।' 'महाराज! मैंने बड़ा पाप किया है। अधर्मके धनसे आपका भोजन करा दिया है। मुझे अपने साथ पशुओंकी तरह बाँध ले चलो। तभी शुद्ध होऊँगा।' यह कहकर सुजानसिंह सिसक-सिसककर रोने लगा।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

महन्तजीने पास ही बैठे छोटे महन्तजीसे कहा—'याद है आपको मनुस्मृतिका वह श्लोक, जिसमें कहा गया है कि अनुताप करने और पुनः पाप न करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनेसे मनुष्य किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसका मन फिर पवित्र हो जाता है!* परंतु यह मनुष्य-प्राणीमें ही सम्भव है, इतर प्राणियोंको पश्चात्तापकी ज्वाला नहीं सताती।'

फिर वे अत्यन्त दीनभावसे खड़े हुए सुजानसिंहसे बोले—'भाई शान्त होओ! आपके द्वारा करायी गयी भोज्यसामग्रीका महाभोग हमारे ठाकुरजीके आरोग लेनेसे वह पवित्र हो गयी थी। वही महाप्रसाद हमने बड़े प्रेमसे पाया है। आप निश्चिन्त होकर घर जायँ और हरि-भजन करें।'

इस तरह समझाकर महन्तजीने कुछ साधुओंके साथ सुजानसिंहको उसके घर भेज दिया।

किंतु चैन न मिला उसे। उसके हृदयकी पश्चात्ताप-जन्य ज्वाला शान्त नहीं हुई। अपने किये काले कर्मकी कलुषता मिटानेके लिये वह छटपटाने लगा। उसकी घबराहट और बेचैनी 'जौक'के शब्दोंमें यहाँतक बढ़ गयी कि—

लोग घबराके यह कहते हैं कि मर जायँगे।
मरके गर चैन न पाया तो किधर जायँगे?

किंतु जैसे मेहँदीके पत्ते पिस जानेपर रंग देते हैं, उसी प्रकार वह कुछ सँभला। एक उपाय सूझा उसे। एक दिन जब कि प्रातःकालकी अरुणिमा पूर्व दिशामें कुछ-कुछ दीखने लगी थी, वह थैली बगलमें दबाकर दबे पाँव घरसे निकल पड़ा और चुपचाप सीधा भवानीदयालके घर गया। भवानीदयाल द्वारपर इसे देखकर काँप उठा। 'शत्रुका क्या भरोसा, कोई हथियार छिपाकर लाया होगा, अभी मेरे ऊपर वार करनेवाला ही है।'

भवानीदयाल यह भयभरे भ्रमकी बातें सोच ही रहा था कि इतनेमें सुजानसिंह उसके पैरोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। अविरल अश्रुधारा बहनेसे भवानीदयालके पाँव गीले हो गये। फिर भी उसका भय भागा नहीं। भला धोखेबाजका क्या भरोसा। 'यह नाटकीय खेल है इसका।' किंतु मानवताके नाते थोड़ी देरके पश्चात् उसने उसे हाथोंका सहारा देकर उठाया। उठते ही सुजानसिंहने काँपते हुए हाथोंसे रुपयोंकी थैली भवानीदयालके हाथोंमें रक्खी। तुरंत भवानीदयालके मनमें संदेहकी एक हल्की-सी ध्वनि उत्पन्न हुई—'भ्रम'। पर उसके सामने ही सुजानसिंह रो-रोकर गिड़-गिड़ाकर बार-बार क्षमा कर देनेकी याचना कर रहा था। भवानीदयाल भी आखिर मानव-हृदय रखता था। कबतक संशयको लिये रहता। अन्तमें उसे पूरा विश्वास हुए बिना नहीं रहा। उसकी आँखोंसे भी अश्रुओंकी धारा बहने लगी। एकदम दोनों मित्र एक दूसरेसे चिपट गये। वर्षोंके बिछुड़े हुए एक मित्रने दूसरे मित्रको खूब ही हृदयसे लगाया। देरतक इसी दशामें रहे। नयनोंके जलसे अपने-आप पाँव धुलने लगे। मौन होकर एक दूसरेने स्नेह भरी निगाहोंसे निहारा। दोनोंके मुखोंपर मिलनेकी खुशी झलक रही थी।

लोग एकत्र हो गये। थैलीमें १००१) रुपये थे।

आज सुजानसिंहको सच्ची शान्ति मिली। उसके हर्षका पार नहीं था।

उस समय दिन चढ़ आया था। मानो भगवान् सूर्यके सारथि अरुणने सप्ताश्वोंकी चाल इसी दृश्यको देखनेके लिये तेज कर दी हो।

---

* कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात् पापात् प्रमुच्यते। नैवं कुर्यात् पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥ (११ वाँ अध्याय)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

एक परिचित संन्यासी

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

कहो बच्चा, क्या काम है ।

मुझे बच्चा न कहो कमल ! मैं तो तुमसे वर्ष-दो वर्ष बड़ा ही हूँगा । बहुत समयसे तुमसे एकान्तमें मिलनेका अवसर ढूँढ रहा था । वास्तवमें तुम-जैसे प्रतिभाशाली छात्रको संन्यासीके वेषमें देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था । सो आज उस जिज्ञासाको शान्त करना चाहता हूँ । तुम्हारी तो कोई नारि भी नहीं मुई और न कोई सम्पत् ही नासी है, फिर तुम मूँड मुँडाकर संन्यासी कैसे बन गये ?

तो क्या जीवनमें असफल होकर ही लोग संन्यास लेते हैं ? यदि ऐसा भी हो तो भी क्या बुरा है । ऐसा कह-कहकर तुम संन्यास-मार्गके प्रति हीन भावना क्यों प्रकट कर रहे हो ? राजनीति और साहित्यके महारथियोंमें भी तो अधिकांश ऐसे ही हैं जो जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें असफल हो चुके थे । उदाहरण दूँगा तो कटुता उत्पन्न होगी ।

ऐसा है, मैं मानता हूँ । कटुता उत्पन्न मत करो ।

मनुष्य असफलताके लिये नहीं बना । यदि वह एक क्षेत्रमें सफल नहीं हो सकता तो दूसरेमें सफल हो सकता है, और वह दूसरा क्षेत्र पहिले क्षेत्रसे नीचा भी हो सकता है, ऊँचा भी । संन्यास, साहित्य अथवा राजनीतिमें ऐसे लोग भी आते हैं जो अपने-अपने क्षेत्रोंमें पूर्णतया सफल हों; परंतु वह सफलता उनकी आकांक्षाओंको पूरा करनेमें नितान्त असमर्थ हो । इसी युगमें स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द-जैसे प्रतिभाशाली नररत्न संन्यासमार्गमें आये थे । क्या उन्हें सम्पत्ति नहीं मिल सकती थी या उनका विवाह नहीं हो सकता था ?

तुम्हारी ऐसी कौन-सी आकांक्षाएँ थीं जो जीवनमें पूरी नहीं हो सकती थीं ?

अमरत्वकी इच्छा । अविनाशी सुख ।

यह सब मृग-मरीचिका है । न अमरत्व ही प्राप्त हो सकता है और न अविनाशी सुख ही ।

एक विज्ञानके विद्यार्थीके मुखसे ऐसी बात नहीं निकलनी चाहिये । सारी वैज्ञानिक प्रगति इसी विश्वासपर आश्रित है कि मनुष्यकी प्रत्येक स्वाभाविक और प्राकृतिक कामनाकी पूर्तिका कोई-न-कोई साधन अवश्य है । मनुष्यने जलपर चलना चाहा, विज्ञानने जलपर चलकर दिखला दिया । मनुष्यने वायुमें उड़ना चाहा, विज्ञानने वायुमें उड़ाकर दिखला दिया । मनुष्यने चन्द्रमामें पहुँचना चाहा और विज्ञान उस इच्छाको भी पूरा करके दिखला रहा है । जब मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं तो फिर अमरत्व और अविनाशी सुखकी कामना क्यों पूरी नहीं हो सकती ? क्या यह कामना वायुमें उड़ने और चन्द्रलोकमें पहुँचनेसे अधिक व्यापक, अधिक सार्वभौम और अधिक स्वाभाविक नहीं है ? क्या तुम इस कामनाको कृत्रिम अथवा अप्राकृतिक मानते हो ? नहीं, तो फिर इसकी पूर्त्तिका कोई-न-कोई साधन क्यों नहीं होगा । संन्यासमार्ग उसीकी खोजका साधन है । और तुम तो वैज्ञानिक होनेके साथ-साथ आस्तिक भी हो । क्या परम पिता परमात्मा सारे ही जीवधारियोंमें कोई ऐसी कामना उत्पन्न कर सकता है जिसकी पूर्त्तिका कोई साधन न हो ? उसने भूख दी तो अन्न भी उत्पन्न किया, प्यास दी तो जलका भी प्रबन्ध किया । फिर कैसे मान लिया जाय कि अमरत्वकी केवल कामना भर देकर बिना उसकी पूर्त्तिका कोई साधन बनाये वह निश्चेष्ट हो गया ।

कमल ! तुम्हें तर्कमें कोई भी पराजित नहीं कर सकता और मैं तो सदैव ही तुमसे पराजित हुआ हूँ । परंतु तर्क ही निर्णय नहीं है । यह बतलाओ—यदि हम सभी संन्यासी हो जायँ तो संसारका अधिक चक्र कैसे चले । खेती-बाड़ी कौन करे, श्रम कौन करे और उनके अभावमें जब अन्न उत्पन्न ही न हो, वस्त्र-उद्योग ठप हो जाय तो संन्यासियोंके लिये ही भोजन-वस्त्र कहाँसे आयें । यदि समाज उन लोगोंको भोजन-वस्त्र देनेसे हाथ खींच ले, जो उनके उत्पादनमें रञ्चमात्र भी सहायता नहीं पहुँचाते तो क्या यह समाजका अपराध होगा ?

अवश्य होगा । समाजसे अति आवश्यक अन्न-वस्त्र पानेका संन्यासीको पूर्ण अधिकार है । समाजमें सम्पत्ति दो प्रकारकी है—उत्तराधिकारमें प्राप्त और श्रमद्वारा उपार्जित । उपार्जित सम्पत्तिमें अवश्य ही संन्यासीका कोई अधिकार नहीं है; परंतु पूर्वजोंकी छोड़ी हुई सम्पत्तिमें तो सभीका अधिकार है । हमने अपना वह अधिकार स्वेच्छासे छोड़ दिया है । तो क्या वह सम्पत्ति इतनी भी नहीं थी कि हम उसके बलपर अन्नकी भिक्षा माँग सकें ।

एक तुम्हें उत्तराधिकार प्राप्त था तो सभीको नहीं था । अपना उत्तराधिकार छोड़कर आनेवाले संन्यासी कितने हैं और घरकी सम्पत्ति नष्ट होनेपर संन्यासी बननेवाले कितने हैं ?

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

धनी और निर्धनका जो अनुपात कर्मशील समाजमें है, वही पूर्वधनी और पूर्वनिर्धनका अनुपात संन्यासियोंमें है। तुम निर्धनवर्गके लिये संन्यास मार्गको बंद नहीं कर सकते।

मैं बंद करना नहीं चाहता हूँ; परंतु जब तुम अर्थोपार्जनके लिये किसी प्रकारके श्रममें विश्वास नहीं रखते तो अपने पूर्वजोंकी सम्पत्तिमें ही तुम्हारा क्या अधिकार रह जाता है? उन्होंने भी तो अर्थोपार्जनके लिये श्रम किया था। तुम्हारी तरह सभी संन्यासी हो जायँ तो इस आर्थिक चक्रका क्या होगा? क्या यह टूटकर चूर-चूर नहीं हो जायगा?

सम्पत्तिके उत्पादनमें श्रम ही कारण नहीं है, प्रकृति भी कारण है। भूमि, वर्षा, धूपके बिना केवल श्रमके द्वारा अन्न कैसे उत्पन्न करोगे। क्या वन, नदी, सागर और सोने-चाँदी तथा लोहे-कोयलेकी खानें प्रकृतिकी देन नहीं हैं। श्रमशील-वर्ग केवल सम्पत्तिके उस भागपर ही एकाधिकार कर सकता है, जो उसके श्रमका उचित मूल्य है। सारी सम्पत्तिका कारण श्रम नहीं है। जो प्रकृतिकी देनका मूल्य है, उसमें सभीका अधिकार है। श्रमशील और हम-जैसे निठल्ले, प्रकृतिमाताके सामने सब समान हैं। संन्यासी अपनी आवश्यकताओंको इतनी कम कर लेता है कि समाजकी सम्पत्तिमें जो उसका न्यायोचित भाग है, उसके भी एक बहुत छोटे अंशसे उसका निर्वाह हो जाता है। रही आर्थिक चक्रकी बात सो आर्थिक चक्र तो धर्म और सदाचार-परायण होनेसे भी टूट जायगा। यदि अन्ताराष्ट्रीय युद्ध और सशस्त्र विद्रोहका भय जाता रहे, जो मैं समझता हूँ जाना ही चाहिये, तो शस्त्रास्त्रोंका निर्माण, बहुत-सा वस्त्र-उद्योग, जूता-उद्योग, बहुत-से यातायातके साधन ठप्प हो जायँगे। राजनीतिविशारदोंका कहना है कि युद्धोंका भय जाते ही २५% आर्थिक चक्र टूट जायगा। यदि समाजसे चोर, डाकू, लुटेरे, उपद्रवी जाते रहें तो पुलिस, जेल, वकील और न्यायालयोंकी क्या आवश्यकता है? क्या तुम नहीं जानते कि जिस दिन कचहरी बंद होती है, उस दिन गाँवमें मोटर चलानेवाले रोते-पीटते दिखायी देते हैं। मुकदमेबाजी समाप्त होते ही २५% आर्थिक चक्र और टूट जायगा। स्वास्थ्य उन्नत होते ही जब चिकित्सकों, औषधालयों, अस्पतालों और ओषधि-निर्माणशालाओंकी आवश्यकता नहीं रहेगी, २५% चक्र और टूटेगा। इस प्रकार ७५% आर्थिक चक्र तोड़नेका तो हम सभी उद्योग कर रहे हैं। शराब, भाँग, गाँजा, चरस, बढ़ी हुई कामुकता, पाउडर, लिपस्टिक २०% आर्थिक चक्रको चला रहे हैं। तो क्या आर्थिक चक्रको चलता रखनेके लिये हम लोगोंमें मुकदमेबाजी, राष्ट्रोंमें विग्रहके बीज बोते रहें? क्या आर्थिक चक्र चलता रहनेके लिये जनताको रोगी, मद्यप और कामुक बनाये रखना उचित होगा?

अच्छा यह समझाओ, संन्यास-मार्गसे तुम अमरत्व और अक्षय सुख कैसे प्राप्त करोगे?

परमात्माको प्राप्त करके।

परमात्मा कैसे प्राप्त होगा?

समस्त कामनाओंका त्याग करके।

तो क्या परमात्माने स्वयं सब कामनाएँ त्याग दी हैं? क्या परमात्मामें कोई कामना नहीं है? तो फिर वह सृष्टिकी रचना क्यों करता है, क्यों धर्मके अभ्युत्थान, दुष्टोंके दमन और साधुओंके परित्राणके लिये बार-बार अवतार लेता है? कमल! तुम निष्काम परमात्माके उपासक नहीं हो। तुम्हारा परमात्मा निष्काम नहीं है। वह सकाम है। वह धर्म-संस्थापनके लिये हर समय आनेको तैयार है और तुम इस भूतलपर रहते हुए भी उसका प्रिय करनेको उद्यत नहीं हो। तुम कैसे भगवद्भक्त हो। क्या तुम्हारे राम और कृष्ण संन्यासी थे?

मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा।

समझ गये, पर उत्तर नहीं दे पा रहे हो। बोलो ऐसी अवस्थामें जब कि शत्रु सीमामें घुस आये हों। कम्युनिस्टोंकी विशाल सेना आर्थिक समानताका मोहजाल फैलाकर जनताको धर्म, सदाचार, ईश्वर—यहाँतक कि राष्ट्र और परिवारके प्रति भी विद्रोही बना रही हो, जहाँ देशमें विदेशी भाषाको बनाये रखनेके लिये लोग प्राणोंपर खेल रहे हों, जहाँ आर्थिक ढाँचा टूट रहा हो, जहाँ समाजकी कोई सेवा किये बिना ही भावोंमें तेजी आनेके कारण लोग करोड़ों पीट लेते हों, जहाँ दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम करनेके पश्चात् भी वेतनभोगी दिन-प्रति-दिन अपनी आयको घटता हुआ पाता हो। जहाँ भ्रष्टाचार और घूसका बोलबाला हो और जहाँ ऐसी विकट परिस्थितिमें भी शासनाधिकारी कुर्सियोंके लिये सिरफुटव्वल कर रहे हों वहाँ और ऐसे समयमें तुम्हारे निष्काम हो जानेसे कौन प्रसन्न होंगे? तुम्हारे धनुर्धारी राम या चक्रधारी कृष्ण?

दोनों ही प्रसन्न होंगे। मैं राम और कृष्णमें भेद नहीं करता। तुमने आज जिस भयावह स्थितिका चित्र खींचा है, मैं उससे परिचित हूँ। परिचित तुम भी हो और मैं

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

भी। अन्तर केवल इतना है कि मैंने उन सबके कारणोंकी खोज की है, तुमने नहीं।

क्या कारण है इस सबका।

हमारा राग टूट गया है। अपनी परम्पराओं, आस्थाओं और संस्कृतिके प्रति हमें कोई राग नहीं रहा। इस युगमें जितने भी नेता हुए हैं, सबने हमारे रागपर प्रहार किया है। सबने सिखाया है कि प्राचीनताके मोहजालको छोड़, जो बात देश और समाजके लिये लाभदायक हो उसे ग्रहण करो। तुलाधार बन जाओ, एक पलड़ेमें हानि और एकमें लाभ रखकर तोल लो। सब बुद्धिगम्य कर दिया। बुद्धिसे ऊपर उठना मानो कोई भीषण अपराध हो।

देश और समाजका हित तो हमें सोचना ही चाहिये।

पर हम सोच नहीं सकते। हित-अहित हम केवल उसीका सोच सकते हैं, जिसके प्रति राग हो। देश और समाजके प्रति राग उत्पन्न किये बिना ही प्राचीनताका राग नष्ट कर दिया गया और जब जीवनका राग किसी उच्चतर स्तरपर नहीं रहता तो मनुष्य धन, स्त्री और अहंका उपासक बन जाता है। आज सीमापर शत्रुके घुस आनेपर भी हमारा खून क्यों नहीं खौलता; क्योंकि हमें देशसे राग नहीं है, हम बुद्धिसे ऊपर नहीं उठे, हम हानि-लाभकी बात करते हैं। इस भूमिमें दलदल है, यह बेकार है। यह पथरीली है। इनके जानेसे हमारी क्या हानि है ? गाय कट गयी तो क्या हुआ। २००) में फिर आ जायगी। मन्दिर टूट गया तो क्या हुआ फिर बन जायगा। रागहीन राष्ट्रकी विचारधारा ऐसी ही नपुंसक और प्राणहीन होती है।

तो फिर आओ तुम और हम देशका अलख जगायें। सारे भारतको राष्ट्र-रागसे प्लावित कर दें।

जबतक देशवासियोंमें राग नहीं होगा, तबतक देशके प्रति राग उत्पन्न नहीं हो सकता।

तो फिर करोड़ों देशवासियोंके प्रति रागात्मक भावनाका प्रसार करें।

देश और राष्ट्र सांस्कृतिक शब्द हैं। राग संस्कृतिके प्रति उत्पन्न होता है। एक ही संस्कृतिके अनुयायी एक राष्ट्र कहलाते हैं और जहाँ वे रहते हैं, वह उनका देश कहलाता है।

तो फिर अपनी संस्कृतिके प्रति ही राग जगानेका प्रयत्न करो।

सो कर रहा हूँ।

कैसे ?

वैराग्यद्वारा।

वैराग्यकी साधना कैसे करते हो ?

रागद्वारा।

वाह, अच्छी पहेली है रागसे वैराग्य और वैराग्यसे राग।

राग और वैराग्य—दोनों सापेक्षिक शब्द हैं। न कोई पूर्णतया रागी ही है न वैरागी ही है। एक वस्तुमें राग होते ही दूसरियोंमें राग छूट जाता है…

छूटता नहीं संतुलित हो जाता है।

यह बात तो मैं बहुत देरके पश्चात् बतलाता। अच्छा है तुम मेरी विचारधारा समझ रहे हो। परिवारमें राग हो जानेका अर्थ है अपनेमें वैराग्य हो जाना और तुम्हारे शब्दोंमें अपनेमें राग परिवारके निमित्त संतुलित हो जाना। परिवारका रागी खाता-पीता न हो या सदैव आत्मघातकी धुनमें रहता हो ऐसी बात नहीं है। वह अपनी भरपूर रक्षा करता है; परंतु परिवारके निमित्त अपनी आकांक्षाओंको और अपनेको होम देनेमें उसे आनन्दका अनुभव होता है, दुःखका नहीं। राष्ट्र और देशका राग हमारे व्यक्तिगत, परिवारगत, प्रदेशगत, समाजगत रागको संतुलित कर देता है, नष्ट नहीं करता। इसी प्रकार ईश्वरका राग जिससे ऊपर कोई राग नहीं है, सारे रागोंको संतुलित कर देता है। मैं इसी रागको जगानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। जनता इसे वैराग्य कहती है और जबतक वह राग न जगे तबतक सारे रागोंको मैंने समेट लिया है। यही मेरा वैराग्य है रागके निमित्त।

ऐसे रागको नमस्कार।

ऐसे वैराग्यको नमस्कार।

ऐसे राग और वैराग्यको नमस्कार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सौजन्यता

सन् १९३६ में एक अमेरिकन महिला टोकियो नगरके कष्टप्रद ग्रीष्मसे त्राण पानेके लिये जापानके उत्तरमें समुद्रतटपर स्थित एक स्वास्थ्यप्रद छोटी-सी बस्तीमें अपनी सप्तवर्षीया कन्याके साथ निवास कर रही थी। इस बस्तीका नाम टाकायामा है। रेलका स्टेशन सेनडाई वहाँसे बीस मील दूर है और जिस पहाड़ीपर स्थित बँगलेमें यह रहती थी, वहाँसे पक्की सड़क भी आध मील दूर है। यहाँपर कोई डाक्टर नहीं था और दवा भी सेनडाईमें ही मिल सकती है।

एक दिन सहसा कन्याके मुखमें छाले हो गये और उसको ज्वर भी हो गया। माँने टोकियो-स्थित विशाल अमेरिकन अस्पताल सेंट ल्यूकको तारद्वारा बच्चीकी दशासे सूचित किया और वहाँसे उत्तर आया कि 'एक विशेष ओषधिके ४० प्रतिशत घोलका मुखके छालोंपर प्रयोग करो।' माता टैक्सी कारमें जाकर सेनडाईसे दवा बनवा लायी; किंतु उस घोलके एक ही बारके प्रयोगसे बच्चीका मुख जल गया और वह चीत्कार कर रोने लगी। माता समझ गयी कि कोई बड़ी भूल हो गयी है। इतनेमें ही वहाँका तारबाबू आया और कहने लगा कि 'औषधका घोल भूलसे ४ प्रतिशतके स्थानपर ४० प्रतिशत तारमें लिखा गया था, जिसके लिये वह क्षमा-प्रार्थना करने आया है।'

इधर बच्चीका कष्ट असह्य हो गया। रातकी टोकियोको जानेवाली डाकगाड़ीके लिये समय नहीं रहा था। इसलिये दिनकी पैसेंजर गाड़ीसे ही जाना होगा। जैसे-तैसे रात कटी, किंतु कन्याका सारा मुखमण्डल सूज गया था, उसपर काले-काले धब्बे पड़ गये थे और वह ज्वरसे बेहोश हो रही थी।

बच्चीको टैक्सीतक पहुँचानेके लिये वह समुद्रतटपर मछेरोंके पास सहायता पानेके लिये गयी। यह सुनते ही कि बच्ची बीमार है, मछेरोंने अपनी नावें समुद्रसे निकाल लीं और चार मछेरे माताके साथ उसके निवास-स्थानपर गये। माताका विचार था कि बच्चीको बाँसकी कुरसीपर बिठाकर उठाया जाय; किंतु मछेरोंने कहा कि इसमें बच्चीको कष्ट होगा और उन्होंने बच्चीकी खाटके चारों पायोंको रस्सोंसे बाँधकर रस्सोंको अपने गलेसे लपेट लिया और हाथोंसे रस्सोंको पकड़कर धानके खेतोंकी मुण्डेरोंपरसे चलकर बड़े आरामसे टैक्सीकी सीटपर बच्चीको लिटा दिया और तब ये चारपाई लेकर लौट गये। वापस आनेपर जब महिलाने उनकी सेवाके लिये पारितोषिक देना चाहा तो उन्होंने इन्कार कर दिया कि 'बच्ची बीमार थी, उसको ले जाना ही था।'

पैसेंजर गाड़ीमें केवल तीसरे दर्जेके डिब्बे थे और बड़ी भीड़ थी। महिलाने रेलके गार्डसे कहा कि 'बच्ची बहुत बीमार है, वह छः सीटोंका किराया देगी। यदि छः सीटोंके गद्दे ब्रेकमें बिछा दें जिसपर बच्चीको लिटाया जा सके और वह बच्चीके सिर तथा मुखपर बर्फ रख सके।' माताकी प्रार्थना सुनकर गार्ड कहीं गया और थोड़ी ही देरमें वापस आकर बच्चीको स्ट्रेचरपर लिटाकर उठा लिया और एक भव्य सैलूनके दरवाजेपर ले गया। वहाँ जापानके उस समयके गृहमन्त्री कौनेसूके उशियाके सचिवने माताका अभिवादन किया और कहा कि 'गृहमन्त्रीको यह जानकर दुःख हुआ है कि आपकी बच्ची बहुत बीमार है और उन्होंने कहा है कि आप उनके शयनागारको स्वीकार करें।' महिलाने कहा कि 'हम इनके शयनागारमें घुसकर इनको कैसे कष्ट दे सकते हैं।' इतनेमें गृहमन्त्री महोदय स्वयं आ गये और कहने लगे कि 'आपकी बीमार बच्चीको बिस्तरकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता मुझे पूरी करनेकी अनुमति देनेकी कृपा करें।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

बच्चीको एक सुन्दर बिस्तरपर लिटा दिया गया। उसके ऊपर पंखा चल रहा था। धूल और मक्खियोंसे बचावके लिये बच्चीके मुखपर एक उज्ज्वल जाली उढ़ा दी गयी। ठंडी पट्टी करनेके लिये धुले-धुलाये तौलिये रख दिये गये। अगले स्टेशनपर कई आईसबैग (बर्फ भरकर ठंडक पहुँचानेके थैले), एक बर्फका तकिया तथा दो सिल्ली बर्फ गाड़ीमें आ गयी। अवश्य ही गृहमन्त्रीने तारद्वारा यह प्रबन्ध किया होगा।

इस गाड़ीके साथ भोजनका डिब्बा नहीं था। यात्री लोग अपने घरसे भोजन लाते थे अथवा स्टेशनोंसे मोल लेकर काम चलाते थे। महिलाको भोजनकी सुधि नहीं थी, किंतु बच्चीका मुख हरा करनेके लिये यवजल (Barley water) और उसकी माताके लिये गरमागरम सुन्दर भोजन तथा फल आ गये।

दोपहर भर जब गाड़ी तपते मैदानमेंसे जा रही थी, एक कुली द्वारपर बर्फ तोड़ता रहा। जहाँ गाड़ी ठहरती, बर्फकी नयी सिल्ली आ जाती। बाहरके ताप तथा ज्वरके प्रकोपको कम करनेके लिये बच्चीका माथा, गर्दन तथा कंधे बर्फसे ढके रहे। पीछे सेंट ल्यूक अस्पतालके डाक्टरने कहा कि 'बच्चीके जीवनकी रक्षा बर्फ और शीत पेयके उपचारने ही की; क्योंकि इनसे ज्वरका प्रकोप और मुखकी सड़न रोकी जा सकी।'

जब गाड़ी डइमो (टोकियो नगरका एक स्टेशन) पहुँची तो रोगीको ले जानेवाली गाड़ी (Ambulance Car) स्टेशनपर तैयार थी। जब महिला मन्त्री महोदयका धन्यवाद करनेके लिये उचित शब्द ढूँढ़ रही थी, जो उसे मिल नहीं रहे थे, मन्त्री महोदयने कहा कि 'जो थोड़ी सेवा मैं कर सका, यह मुझे करनी ही थी; क्योंकि आप मेरे देशकी अतिथि थीं।' महिला कृतज्ञतासे गद्गद हो गयी।

—निरञ्जनदास धीर

(२)

शिक्षितोंका कर्तव्य

स्व० श्री वा० मो० शाह एक छात्रालयका संचालन करते थे। उस छात्रालयमें एक दिन एक विद्यार्थीने 'हाउस-मास्टर' से शिकायत की कि 'आज नौकरने जल नहीं भरा है।' हाउस-मास्टरने नौकरको बुलाकर उसपर छड़ी फटकार दी। अन्तमें शिकायत आयी वा० मो० शाहके पास। उन्होंने हाउस-मास्टरसे पूछा कि 'तुमने कभी घर और उसकी व्यवस्था देखी भी है या नहीं?' परंतु वह बेचारा तो अभी अविवाहित था, अतएव प्रश्नका सच्चा अभिप्राय नहीं समझ पाया। परिणाममें वा० मो० शाहने फिर स्पष्टरूपसे पूछा कि 'तुम्हारी माता या पत्नी किसी दिन कोई काम करना भूल जायँ या खूब थकी होनेके कारण न कर सकें तो क्या तुम उन्हें लकड़ीसे मारोगे?' परंतु 'घर' और 'कुटुम्ब' की भावनाका स्पर्श न कर सकनेवाला वह 'हाउस-मास्टर' क्या उत्तर देता? वा० मो० शाहने समझ लिया कि इस जगहपर किसी विवाहित पुरुषको ही रखना चाहिये। अतएव उसके साथ कोई विवाद न करके उसका काम किसी बालबच्चेदार आदमीको सौंपनेका उन्होंने निर्णय कर लिया; फिर शिकायत करनेवाले विद्यार्थीको बुलाकर पूछा—कि 'तुम्हारी माँ यदि किसी दिन जल देना भूल जायँ तो तुम अणगल जल पीओगे? या अपने हाथसे भरकर जल पी लोगे?' इस विद्यार्थीको उन्होंने समझाया कि नौकरकी भूल तो थी ही, परंतु तात्कालिक उपायके रूपमें विद्यार्थीको स्वयं पहले जल भर लेना चाहिये था और उसके बाद ही शिकायत करनी चाहिये थी। उच्च शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी जब अपने पीनेका पानी स्वयं नहीं भर लेने-जितने कर्त्तव्यको नहीं समझ सकता तो फिर आठ रुपयेके अपढ़ नौकरसे 'कर्त्तव्य'-पालनकी आशा कैसे रक्खी जा सकती है? 'अखण्ड आनन्द।'

—त्रिभुवन वीरजी भाई देमाणी

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

(३)

भक्तकी ईमानदारी

'रतनगढ़ शहरसे थोड़ी दूर एक टीबेपर प्रकृतिकी सुरम्यस्थलीमें भगवान् श्रीहनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। वहाँ अपंग, बेघरबारके भक्त लोग आश्रय पाते हैं। श्रीभानीरामजी महाराज वहाँ विराजते हैं; अतः उस स्थानका नाम 'भानीधोरा' हो गया है। उनमेंसे एक श्रीसुखराम नामके सज्जन भी वहाँ रहते हैं। आप जोधपुरके हैं, लेकिन रहते भानीधोरा ही हैं। आप बाजारसे आश्रमके लिये सामान आदि लानेका कार्य करते हैं। २९ अप्रैल १९६५ बुधवार शामको ४ बजे जब आप बाजारमें घंटाघरके पाससे गुजर रहे थे तो एक ताँगेके पहियेके पास आपको दबा हुआ एक बटुआ मिला, जिसमें ५४२१) रुपये कुछ पैसे पाये गये थे। आपने वह बटुआ अपने थैलेमें रख लिया और आप उसके मालिककी तलाशमें इधर-उधर चक्कर लगाने लगे।

वह बटुआ छापरके श्रीगुमानीरामजी दूगड़का था जो रतनगढ़ पचीस-तीस भरी सोना बेचने आये थे। दूगड़जीने ज्यों ही सिगरेटके लिये जेबमें हाथ डाला कि वह गिर पड़ा, फिर अशोकस्तम्भके पास फिर हाथ डाला तो बटुआ नदारद था।

आप वहीं भौंचक्के-से हो गये और पागलकी तरह चिल्लाने लगे। करीब छः बजे श्रीसुखरामजी स्टेशन-की तरफ उन्हें ढूँढ़ने गये तो रास्तेमें सेठजीको पागलको तरह देखा, तब उन्होंने उनसे कुछ बातें पूछकर यह जान लिया कि बटुआ उन्हींका है और वह बटुआ उनको दे दिया। बटुआ पाते ही सेठजी फिर भौंचक्के-से हो गये। होश आनेपर सेठजी श्रीसुखरामजीको पाँच सौ भेंटमें देने लगे किंतु आप तो वहाँसे 'जय सियाराम' कहकर 'भानीधोरा' आ गये।

यह घटना आँखों देखी सर्वथा सत्य है।

—एल० डी० महर्षि कोविद

(४)

यह संसार ओसका मोती

झाँसीसे दतियाकी ओर राजमार्गपर चौथे मीलका स्तम्भ एक पुलियाके निकट खड़ा है। १८ फरवरी ६५ की सायंकाल साढ़े पाँच बजे हमारी लारी इस पुलियापरसे गुजर रही थी। एक दस वर्षीय बालक सड़कके बीचो-बीच आगे चला जा रहा था। हार्न देने-पर वह इंजिनके समीप ही आ गया। ड्राइवरने बचावके लिये लारीको एक ओर मोड़ दिया। लड़का भी हक्का-बक्का होकर उधर ही मुड़ पड़ा। मुश्किलसे एक फुट दूरीपर लड़केको बचाते हुए ड्राइवरने लारी रोकी।

लड़का तो बचा ही, लारी भी मीलके पत्थरकी टक्करसे बची। पक्की सड़कसे हटकर कच्ची कगारपर गाड़ी तिरछी होकर ऐसी रुकी, जहाँसे आगे कहानी कुछ दूसरी होती। ब्रेक न सधता, तनिक और बढ़ती, तो किनारेके तीन फुट गहरे पाँच फुट लंबे गड्ढेमें गिरती। ऐसे गड्ढे पी० डब्ल्यू० डी० वाले सड़कपर मिट्टीकी सुन्दरता बिछानेके लिये खोद रखते हैं।

ड्राइवरका कमाल समझा जाय या भगवान्‌का करिश्मा या सवारियोंकी अपनी किस्मत। गाड़ी गड्ढेसे फुट भर दूर ही रुक गयी। स्पष्ट था कि लारी उधर बढ़ती तो सँभल न पाती। उलटकर वह दूसरी ओर गड्ढेके आगे दस-बारह फुट गहरी और काफी लम्बी-सी एक खाईमें कलाबाजी दिखाती हुई चूर-चूर हो जाती। दूर उधर खेत और सड़कके बीचमें बरसाती पानीके जमावकी यह खाई कब्रिस्तान बननेसे बच गयी!

ज्यों ही लारी रुक पायी, चालक शान्त स्वभावसे उतरा। बालकको दिलासा देते हुए उसने कहा—'ऐसे न चला करो। तुम भी बचे और सवारियोंकी जान बची। मरनेमें कसर न थी। किसके लड़के हो? कहाँ जा रहे हो?'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

लड़केने बताया, वह नाई-पुत्र है। दो मील आगे सिमरधा गाँवमें एक ब्याहमें जा रहा है। माँ-बाप उसे घरपर अकेला छोड़कर दावत खाने वहाँ गये हैं। इसलिये वह गुस्सेमें भरा चला जा रहा था। माँ-बापपर उसे इतना क्रोध था कि मर जानेसे भी उसे डर न था।

विवाहोंके सीजनमें ठसाठस भरी गाड़ीमें दो छोटी बहुओं और एक गँवई दूल्हेके अतृप्त अरमानोंने ही शायद सबके प्राण बचाये। किसीने लड़केसे कहा—'अरे, तू नहीं डरता, तो न सही। पर आज तूने हम सभीकी जान ली होती। भगवान् ही सीधा था, जो सभी बच गये। हम सभीका भाग्य अच्छा था, जो दुबारा जन्म हुआ।'

मैंने कहा—'भाई, हमारा भाग्य तो बड़ा लीचड़ है। भाग्य तो लड़केका ही चोखा है, जिसमें इतनी हत्याएँ बिल्कुल नहीं लिखी थीं—नहीं तो, नर-संहारमें देर क्या थी!'

'जान तो बची, पर फटीचर गाड़ीकी ब्रेकको चालने नीचेका कोई पिन निकाल दिया। फिर तो वह ऐसी बिगड़ी कि दो घंटे तक सुधरनेका नाम न लिया। सवारियाँ झल्लाती रहीं। मैं तो चार घंटेकी जल्दीके पीछे आगरासे झाँसी तक मेलका चक्कर लगाता हुआ दतिया वापिस जा रहा था। मेल दतियापर रुकती नहीं। समय और पैसा तो व्यर्थ गया। पर होते-होते बचनेवाली एक भयंकर दुर्घटनाने दो बड़े मन्त्र दे दिये—और

जैसो मोती ओसको, तैसो यह संसार।
नर चेता नहिं होत है, प्रभु-चेता तत्काल॥

—हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, एम्० ए०, एल्० टी०

वेद-विभूति

(रचयिता—विद्या-वाचस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा डी० लिट्०)

है वैदिकताका वैभव परम पुरातन,
वैदिक शिक्षा अति पुण्यमयी, अति पावन,
ऋषि-मुनि वेदामृत-पान किया करते थे।
वेदोंपर प्यारे प्राण दिया करते थे।
उस दिव्य ज्योतिसे ज्ञान उजाला करिये—
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

वह मानवताका अविचल-अटल सहारा;
सब जीव-जन्तुओंपर अति प्रेम प्रसारा,
वसुधा कुटुम्बका भव्य भाव विस्तारा,
कल्याण-त्राण, तप-त्यागमयी ध्रुव धारा,
वैदिकताके बलसे भवसागर तरिये—
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

अवयुक्त अशान्त भावना भभक रही है,
अन्याय-स्वार्थकी ज्वाला धधक रही है,
मानव, मानवपर वज्रबाण बरसाता,
हा! एक-दूसरेको जीते-जी खाता,
वैदिक विधानसे सबके संकट हरिये—
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

मन-वचन-कर्ममें जब शुचिता आयेगी,
जन-जीवनमें नैतिकता छा जायेगी,
प्रिय पुण्य-पताका घर-घर फहरायेगी,
सब सृष्टि वेदकी गुण-गरिमा गायेगी,
शुभ धर्म धारणा धन्य ध्यानमें धरिये,
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

जो तत्त्व अभ्युदय-निःश्रेयस-साधक है,
जो व्यष्टि-समष्टि परम प्रभु आराधक है,
जिसने मानव-मंगलकी ज्योति जगायी,
जो प्राणिमात्रके लिये सदा सुखदायी,
वह श्रेयस्कर सद्धर्म, उसे अनुसरिये,
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

वर वेद पूज्य कल्याण-त्राण दाता हैं,
सद् ज्ञान-भानु प्रेरक पथ-निर्माता हैं,
जबतक वेदोंकी ज्योति जगी जीवनमें,
शुचिता-ऋजुता थी, ममता रही न धनमें,
वेदोंके लिये जिओ, वेदोंपर मरिये,
वेदोंकी विमल विभूति विश्वमें भरिये।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजीके सम्बन्धमें कुछ

श्रद्धेय श्रीसेठजीका शरीर इधर एक वर्षके अधिक समयसे रुग्ण था। यद्यपि वे स्वरूपतः सदा स्वस्थ थे। (समदुःखसुखः स्वस्थः।) वे बाँकुड़ा थे। पर गत मार्च मासमें ऐसा अनुमान हो गया था कि उनका भौतिक देह बहुत दिन नहीं चलेगा। अतः उनके इच्छानुसार उन्हें बाँकुड़ासे गीताभवन, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) के पवित्र गङ्गातटपर लाया गया। वे ३१ मार्चको यहाँ पहुँच गये थे। तदनन्तर ता० ६ अप्रैलको भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार भी वहाँ पहुँच गये। परिवार-घरके प्रिय बन्धु तथा सत्संगी भाई-बहिन भी प्रचुर संख्यामें पहुँचने लगे और अन्ततक बहुत लोग आ गये। शरीरकी स्थिति उत्तरोत्तर गिरने लगी। पर देहावसानके पाँच दिन पहलेतक वे पत्र सुनते तथा उनके उत्तर लिखवाते रहे। बोलनेकी शक्ति कम हो गयी थी और उदर, पीठ तथा सिरमें भयानक पीड़ा थी, तथापि वे धीरे-धीरे बोलते और उपदेशकी बात कहते थे। प्रतिदिन—यहाँतक कि देहावसानके दिनतक उन्होंने संध्या की, सूर्यार्घ्य दिया। नामजप तो उनका अन्तिम क्षणतक चलता रहा। सदाचारादि नियमोंका पालन भी अक्षुण्णरूपसे अन्त समयतक उनका चालू रहा। उन्होंने भयानक-से-भयानक पीड़ामें भी कभी एलोपैथिक दवा तो ली ही नहीं। आयुर्वेदिक ओषधियोंमें भी, उनका सेवन नहीं किया, जिनमें कुछ भी अपवित्र वस्तुका कोई संयोग रहा हो। खान-पानमें उनका नियमपालन ज्यों-का-त्यों बना रहा। वे आदर्श सदाचारी थे। अपनी अस्सी वर्षकी दीर्घ आयुमें उन्होंने आजन्म भारतीय संस्कृति, ऋषिप्रणीत सनातनधर्म, अध्यात्मतत्त्व, ईश्वरभक्ति, गीतोक्त निष्कामकर्मयोग, ज्ञान, दीनसेवा, गोसेवा एवं प्राणिहित आदिके सेवन तथा प्रचार-प्रसारके द्वारा भगवान्‌की जो अवर्णनीय सेवा की, वह सर्वथा आदर्श और चिरस्मरणीय है। साधनामें भक्तिकी प्रधानता, सिद्धान्तमें निष्काम कर्मयोग और स्वरूपतत्त्वमें अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा आपके जीवनमें प्रतिष्ठित थी। उन्होंने इनका केवल प्रचार ही नहीं किया—स्वयं साधन किया और अनुभव प्राप्त किया। वे जीवन्मुक्त महापुरुष थे।

दिनांक १६ रात्रिको उन्होंने भाई हनुमानप्रसादसे ध्यान करानेको कहा। पहले तो वे नहीं समझे, परंतु पुनः संकेत प्राप्त करनेपर उन्होंने सेठजीके प्रिय 'आनन्द' तत्त्वका विशेषणोंसहित उच्चारण किया। उन्होंने उसे बार-बार सुना। बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर पुनः वैसा ही संकेत मिला, तब हनुमानप्रसादने उन्हें पुनः आनन्द-तत्त्वके शब्द कई बार सुनाये, फिर अद्वैत ब्रह्मके बोधक कुछ श्रुतियाँ सुनायीं और उन्हें उनके अपने नित्य सत्य ब्रह्म-स्वरूपका वर्णन सुनाया। जो कुछ सुनाया उसमेंसे कुछ यहाँ दिया जा रहा है—

आनन्दतत्त्वके उद्गार

आनन्द, आनन्द, सत् आनन्द, चित् आनन्द, पूर्ण आनन्द, अचल आनन्द, ध्रुव आनन्द, शान्त आनन्द, घन आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, अमृतस्वरूप आनन्द, स्वरूपानन्द, आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द, विज्ञान आनन्द, कैवल्यानन्द, महदानन्द, अजरानन्द, अक्षरानन्द, नित्य आनन्द, अव्यय आनन्द, अनन्त आनन्द, अपार आनन्द, परात्परानन्द, असीम आनन्द, परमानन्द, अनिर्वचनीय आनन्द, अचिन्त्य आनन्द, अपरिमेय आनन्द, निरतिशय आनन्द, आनन्दमय आनन्द, आनन्दमें ही आनन्द, आनन्दसे ही आनन्द, आनन्दको ही आनन्द, आनन्द-ही-आनन्द, आनन्द-ही-आनन्द, आनन्द, आनन्द।

तदनन्तर कहा—

'आपमें न जन्म है, न मृत्यु है; न जरा है, न रोग है; न वृद्धि है, न ह्रास है; न विकास है, न विनाश है; न मन है, न चित्त है; न प्राण है, न अप्राण है और न इन्द्रिय है; न इन्द्रियोंके विषय हैं।—

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
(कठोपनिषद् १ । ३ । १५)

'जो शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है, अव्यय है, रसरहित है, नित्य है, गन्धरहित है । इस अनादि, अनन्त, महत्तत्त्वसे पर और ध्रुव तत्त्वको जानकर मनुष्य मृत्युमुखसे छूट जाता है ।'

आप वैसे ही हैं । आप सत्-चित्-आनन्द ब्रह्मस्वरूप हैं; नित्य हैं, निरामय हैं । आप दिव्य हैं, अमूर्त पुरुष हैं, बाहर-भीतर सर्वत्र विद्यमान हैं, न बाहर हैं, न भीतर हैं; आप अजन्मा हैं; आप प्राण-रहित, मनरहित, शुद्ध उज्ज्वल अक्षर परात्पर ब्रह्म हैं ।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥
(मुण्डक० २ । १ । २)

आप नित्य हैं, विभु हैं, सर्वगत हैं, सर्वातीत हैं, अत्यन्त सूक्ष्म हैं, अविनाशी हैं—

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं····अव्ययम्····
(मुण्डक०)

आप सर्वप्रकाशरूप हैं, चिन्मात्र ज्योति हैं, तीनों कालोंसे मुक्त हैं, कामादि विकारोंसे रहित हैं, आप समस्त दैहिक दोषोंसे मुक्त, सदा निर्दोष हैं, आप निर्गुण हैं ।

आप नित्यमुक्त हैं, अतएव मुक्तिसे रहित हैं, आप सदा समरूप हैं, शान्त हैं, पुरुषोत्तम हैं, यही आपका स्वरूप है । केवल एक ब्रह्म ही ब्रह्म है और वही आप हैं ।

सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् ।
कालत्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ॥
कायिकादिविमुक्तोऽस्मि निर्गुणः केवलोऽस्म्यहम् ।
मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा ।
सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि पुरुषोत्तमः ॥
(मैत्रेय्युपनिषद्)

आप भूमा हैं, अल्प नहीं हैं । जो भूमा है, वही सुख है, अल्पमें सुख नहीं है । जहाँ अन्यको नहीं देखता, अन्यको नहीं सुनता, अन्यको नहीं जानता, वह भूमा है और जहाँ अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है, अन्यको जानता है, वह अल्प है । जो भूमा है, वह अमृत है और जो अल्प है वह मरण-शील है । वह भूमा अपनी महिमामें ही स्थित है । भूमाके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं । वह भूमा आपका स्वरूप है ।

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखम्·····यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्य-च्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तद-मृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।·········स्वे महिम्नि प्रतिष्ठित·····
(छान्दोग्य०)

'आत्मा पापरहित है, जरा-मरणरहित है, शोक-विषादरहित है, क्षुधा-पिपासारहित है, सत्य-काम और सत्यसंकल्प है । वह आत्मा आप हैं । आप नित्य विशुद्ध चिन्मय परमतत्त्व हैं—

'य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशो-कोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्य-संकल्पः··· ··'
(छान्दोग्य०)

'नित्यं विशुद्धं चिन्मयपरं तत्त्वम् ।'

आप नित्य आलम्बनरहित, नित्य भयरहित, नित्य द्वैताद्वैतरहित, नित्य प्रशान्त, नित्य निर्मल, नित्य जन्मजरामरणसे रहित, नित्य परिपूर्ण, नित्य मायातीत-गुणातीत, नित्य निर्द्वन्द्व, नित्य आत्मतृप्त, नित्य आत्मरत, नित्य आत्मसंतुष्ट और नित्य आत्म-स्वरूप हैं ।

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आप नित्यमुक्त हैं, आप जीवन्मुक्त हैं; ब्रह्म आपका स्वरूप है और आप उस नित्य ब्रह्ममें ही अभिन्न प्रतिष्ठित हैं। एक ब्रह्म ही ब्रह्म है। ब्रह्म ही है।

'अयमात्मा ब्रह्म', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म', 'तत्त्वमसि,' ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

जिस समय भाई हनुमानप्रसाद उन्हें यह सब सुना रहे थे, उस समय सेठजीके चेहरेपर आनन्द-की लहरें-सी उठ रही थीं। वे अत्यन्त प्रसन्न थे। सोये-सोये ही बारंबार हनुमानप्रसादको हाथोंसे खींचकर उनके गलेमें दोनों हाथ डालकर उन्हें हृदयसे लगाना चाहते थे।—बार-बार सुनानेका संकेत करते थे और इससे उन्हें बार-बार सुनाया भी जाता था। सब सुननेके बाद वे आनन्द-गद्गद वाणीसे धीमे स्वरमें बोले—'ठीक है—ठीक है। सब ब्रह्म ही है,, ब्रह्म ही है। और कुछ भी नहीं है। आनन्द आनन्द।'

गत दिनांक १७ अप्रैलको दिनके लगभग ४ बजे पवित्र गङ्गातटपर परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजीके भौतिक देहका त्याग हो गया। निष्काम कर्मयोगकी सजीव प्रतिमा और अद्वैत ज्ञानके एक प्रकाशमान सूर्यका अस्त हो गया। यों तो उनके उपदेश अमर थे और नित्य अमर रहेंगे।

श्रद्धेय सेठजीके अन्तिम अमृतोपदेश

बाँकुड़ासे गीताभवन (स्वर्गाश्रम-ऋषिकेश) आते समय लखनऊमें दर्शनार्थ आये हुए लोगोंसे कहा—

'नित्य नियमपूर्वक अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करना, उनकी सेवा करना और उनका आज्ञा-पालन करना।'

'नित्य निरन्तर भगवान्‌के नामका श्रद्धा-सहित निष्काम भावसे प्रेमपूर्वक जाप करना और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करना।'

'एक क्षणके लिये भी भगवान्‌के नामको कभी न भूलना।'

'खूब मनसे ये सब करना और जरा भी कमी रहे तो उसके लिये एकान्तमें श्रद्धा-विश्वासपूर्वक करुण भावसे गद्गद होकर रोते हुए भगवान्‌से प्रार्थना करना।'

'सबको भगवान्‌का स्वरूप समझना।'

'सब वस्तुओंको भगवान्‌की समझना।'

'सब कार्य भगवान्‌के समझना और भगवान्‌के लिये ही सब काम करना।'

'नित्य श्रद्धा-विश्वासपूर्वक निष्काम प्रेमके साथ यह सब करनेपर बारह महीनेमें भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है……………'

देहावसानसे कुछ ही दिनपूर्व गीता-भवनमें कहे और लिखवाये हुए अमूल्य वाक्य—

'दुर्गुण, दुराचार, दुर्विचार, दुर्व्यसन, दंभ, मद, अभिमान, अधिक निद्रा, आलस्य, प्रमाद, विषयभोगोंका तथा भोगियोंका सङ्ग—इनको विषके समान समझकर इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। ये सब आसुरी सम्पत्ति हैं।'

'सद्गुण, सदाचार, सद्विचार, सत्संग, सरलता, साधुता, नम्रता, ज्ञान, वैराग्य एवं ईश्वरकी भक्ति—इनको अमृतके समान समझकर इनका नित्य निरन्तर सेवन करना चाहिये। यह दैवी सम्पत्ति है। यही सार तत्त्व है।'

'आसुरी सम्पदा नरकके लिये है और दैवी सम्पदा कल्याण करनेवाली है।'

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रद्धेय सेठजीके भौतिक देहावसानपर उनके 'गोविन्दभवन ट्रस्ट'का प्रस्ताव

गोविन्द-भवन-कार्यालयके मूल संस्थापक, संचालक, अध्यक्ष और प्राणस्वरूप श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका-का गत दिनाङ्क १७ अप्रैल, शनिवार, सन् १९६५ मिति वैशाख कृष्णा द्वितीया संवत् २०२२ को दिनके ४ बजे गीताभवनमें ही देहावसान हो गया। अतएव सर्वसम्मतिसे यह सभा उनके भौतिक देहका और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली सहायताका भयानक अभाव अनुभव करती है। यद्यपि वे नित्य ही अपने आत्म-स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे। भौतिक देहके अवसानसे उनकी स्वरूप-स्थितिमें किसी प्रकारकी भी हानि-लाभकी कल्पना नहीं की जा सकती, तथापि उनके द्वारा प्राप्त होनेवाले बाह्य सहयोगसे वञ्चित हो जानेका बड़ा भारी आघात लगा है और इसके लिये इस सभाके सभी ट्रस्टी अत्यन्त दुःखित हैं। उन्होंने अन्तिम समयतक इस ट्रस्टके साथ ही उनके अपने द्वारा संस्थापित अनेक संस्थाओंको एवं लाखों-लाखों व्यक्तियोंको अपने पवित्र उपदेश, आदर्श आचरण, सत्सिद्धान्तकी दृढ़ता, आचारके पालन, सत्परामर्श एवं विविध प्रकारसे जो सहायता दी है उसका कोई भी बदला नहीं है। यह सभा इसके द्वारा संचालित सभी संस्थाओंसे, उनके कार्यकर्ताओंसे एवं श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लाभ उठानेवाले संख्यातीत नर-नारियोंसे सादर सविनय अनुरोध करती है कि वे सब लोग उनके भौतिक देहके अवसानपर शोक न मनाकर उनके दिव्य उपदेशोंको और आदर्श आचरणोंको अपने जीवनमें उतारकर उनके प्रति सच्ची श्रद्धाका परिचय दें और उनके उपदेशों-का, उनके द्वारा लिखित सिद्धान्तोंका प्रचार-प्रसार करके उनकी पवित्र स्मृतिको बनाये रक्खें और बढ़ाते रहें। यही उनका वास्तविक स्मारक है।

कृतज्ञता-प्रकाश तथा क्षमा-प्रार्थना

श्रद्धेय श्रीजयदयालजीके इस भौतिक देहत्यागसे देशकी, धर्मकी क्षति हुई है, वह अवर्णनीय है। समस्त देशके कोने-कोनेसे हमारे पास बहुसंख्यक तार, पत्र आये हैं और अभी आ रहे हैं। इन सहानुभूति, संवेदना प्रकट करनेवाले तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेवालोंमें बड़े-बड़े संत-महात्मा, सम्मान्य आचार्य, केन्द्रिय मिनिस्टर, प्रदेशोंके मिनिस्टर, माननीय जननायकगण, परम आदरणीय विद्वान्, बड़े-बड़े व्यापारी, प्रसिद्ध समाचारपत्रोंके संचालक तथा सम्पादक, सम्मानास्पदा देवियाँ, देशकी विभिन्न संस्थाएँ तथा कल्याणके एवं गीताप्रेसके साहित्यके पाठक-पाठिका, स्वजन-समुदाय, सर्वसाधारण—सभी श्रेणीके हमारे सम्मान्य व्यक्ति हैं। विभिन्न भाषाओंके पत्रोंने सम्पादकीय वक्तव्य छापे हैं। हम उन सभीके अति कृतज्ञ हैं। प्रयत्न तो यही है कि सभी तार-पत्रोंके अलग-अलग उत्तर देकर कृतज्ञता प्रकट की जाय। परंतु तार-पत्रोंकी संख्या अत्यधिक होने, कई तार-पत्रोंमें पूरा पता न होने तथा पत्र न मिलने या प्रमादवश छूट जानेके कारण सब पत्रोंके उत्तर नहीं दिये जा सकेंगे। देशभरकी इस संवेदना तथा सहानुभूतिसे हम-लोगोंको बड़ा ही बल तथा आश्वासन मिला है। इसके लिये मैं गीताप्रेस, कल्याण-परिवार तथा श्रद्धेय सेठजीके निज परिवारकी ओरसे हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हुआ अत्यन्त विनीतभावसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके जीवनको ऊँचा उठानेवाले लेखोंके संग्रह

(प्रत्येक भागमें सर्वथा स्वतन्त्र अलग-अलग लेख हैं)

इन लेखोंमें लौकिक, पारलौकिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—सर्वतोमुखी उन्नति करानेमें सहायक एवं सभी वर्ण, आश्रम, स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओंके कामकी यथेष्ट सामग्री है। वस्तुतः ये लेख परमात्मतत्त्वका यथार्थ ज्ञान करानेके लिये 'चिन्तामणि' के समान हैं।
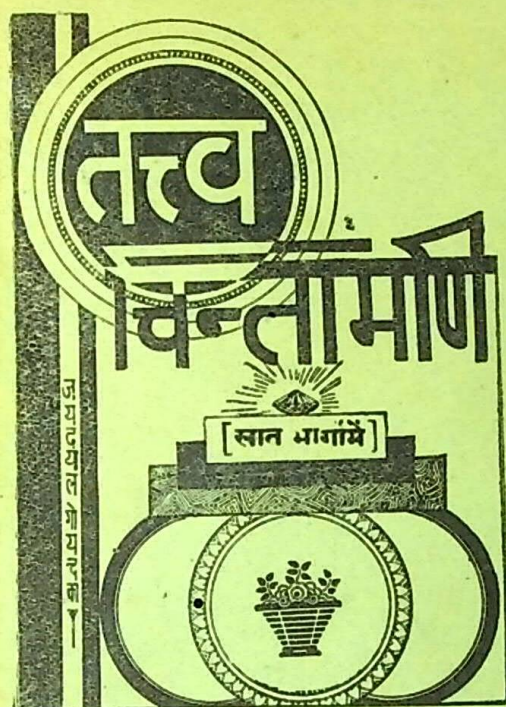
	मू० रु.न.पै.
भाग १—में २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ३५२, चित्र तिरंगे २	०.६२
भाग २—में ४८ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५९२, चित्र तिरंगा १	०.८७
भाग ३—में ३३ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४२४, चित्र तिरंगे २	०.७०
भाग ४—में ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२८, चित्र तिरंगे ५	०.८१
भाग ५—में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४९६, चित्र तिरंगे ४	०.८१
भाग ६—में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४५६, चित्र तिरंगा १	१.००
भाग ७—में ३२ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२०, चित्र तिरंगा १	१.१२

श्रीगोयन्दकाजीकी अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

१–श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी—गीताविषयक २५१५ प्रश्न और उत्तरके रूपमें विवेचनात्मक ढंगकी हिन्दी टीका, पृष्ठ ६८४, चित्र तिरंगे ४	४.००
२–आत्मोद्धारके साधन—पृष्ठ ४६४, रंगीन चित्र ४	१.२५
३–भक्तियोगका तत्त्व—पृष्ठ ४५६, रंगीन चित्र ४	१.२५
४–कर्मयोगका तत्त्व—पृष्ठ ४२०, दो तिरंगे, तीन सादे चित्र	१.१२
५–महत्त्वपूर्ण शिक्षा—पृष्ठ ४७६, रंगीन चित्र ४	१.००
६–परम साधन—पृष्ठ २७२, रंगीन चित्र ५	१.००
७–मनुष्यजीवनकी सफलता—पृष्ठ ३५२, रंगीन चित्र ५	१.००
८–परम शान्तिका मार्ग—पृष्ठ ४१६, रंगीन चित्र ४, सादे २	१.००
९–मनुष्यका परम कर्तव्य—पृष्ठ ४१०, रंगीन चित्र ४	१.००
१०–ज्ञानयोगका तत्त्व—पृष्ठ ३८४, रंगीन चित्र ३	१.००
११–प्रेमयोगका तत्त्व—पृष्ठ ३८०, रंगीन चित्र ५, सादा १	१.००

सभी पुस्तकोंका डाक-व्यय अलग।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi

आसुरी शक्तियोंपर विजय पानेके लिये भगवदाराधन और देवाराधन कीजिये !

भारतीय संस्कृति प्राणीमात्रमें एक 'भगवान्' और 'आत्मा' मानती है। इसीलिये प्राणीमात्रका हितचिन्तन उसका सहज स्वभाव है। सबमें परस्पर प्रेम रहे, सब सबका हित-साधन करें, कोई किसीसे द्वेष-वैर न करे, सब सबको सुख पहुँचानेका प्रयत्न करें—यह हमारा आदर्श है। इसीसे भारतका यह स्वाभाविक नारा है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब तन-मनसे नीरोग हों, सभीको कल्याणका साक्षात्कार हो और दुःखका भाग किसीको न मिले।' परंतु इस परम पवित्र आदर्शपर विश्वके मनुष्य चलते रहें, इस आदर्शका पालन-संरक्षण और विस्तार हो, इसके लिये प्रयत्न तथा इसमें बाधा देनेवाली प्रबल आसुरी शक्तियोंका दमन आवश्यक है। आसुरी शक्तिके दमनमें उसका भी हित है। दमन न होनेपर वह यदि बढ़ती चली जायगी तो उत्तरोत्तर उसका पापपूर्ण विस्तार होता जायगा, जो उसके लिये भी परिणाममें अत्यन्त घातक होगा। जैसे अपने ही किसी अत्यन्त सड़े हुए अङ्गको आपरेशनके द्वारा निकलवा देना आवश्यक होता है, उसी प्रकार विश्वमानव-शरीरके सड़े हुए अङ्गका भी आपरेशन आवश्यक है। फिर, जहाँ भौतिक राज्य-संचालनके द्वारा भगवान्की पूजा करनी है, वहाँ तो सुरक्षाका प्रयत्न भी भगवत्पूजाका एक आवश्यक अङ्ग है। हमलोगोंने शान्ति और अहिंसाके नामपर इसकी ओर ध्यान नहीं दिया, इसीसे आज दुर्दान्त चीन और पाकिस्तान भारतपर आक्रमण करनेकी बड़ी तैयारी कर रहे हैं और इस समय चीनके द्वारा सैन्य-संग्रहके अतिरिक्त आक्रमणकी कोई क्रिया न होनेपर भी पाकिस्तानने तो जहाँ-तहाँ आक्रमण भी आरम्भ कर दिया है। इनके इस बढ़े हुए रोगका नाश करके इन्हें नीरोग बनाकर इनका हित-साधन करना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव भारतको अपना बल-विक्रम, शौर्य-वीर्य इतना बढ़ा लेना चाहिये कि किसीका भी भारतकी ओर ललचायी दृष्टिसे देखनेका साहस न हो और भारतकी जो भूमि अन्याय-पूर्वक दबा ली गयी है, उसे भी लौटा देना पड़े। इस दिशामें हमारी सरकारको पूरा प्रयत्न करना चाहिये और जनताको हर तरहसे उसमें सरकारकी सहायता करनी चाहिये।

भारत सदासे ही शान्ति चाहता है और वह सदा ही शान्ति चाहता रहेगा; पर यदि उसपर कोई अन्यायपूर्वक आक्रमण करना चाहेगा तो उसको पूरा दण्ड दिया जायगा—यह हमारी नीति होनी चाहिये।

परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल भौतिक बल-विक्रमसे ही काम नहीं चलेगा। पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये 'अध्यात्म-बल'—'दैवी बल'की परम आवश्यकता है। अतएव मूर्खतावश भारतपर आक्रमण करने-वाले इन देशोंकी बुद्धि शुद्ध करनेके लिये और भारतके अजेय बलके सामने इनका साहस सदाके लिये नष्ट हो जाय, इसके लिये स्थान-स्थानपर भगवदाराधन और देवाराधनका पवित्र कार्य होना चाहिये। वैदिक और तान्त्रिक विष्णुयाग, रुद्रयाग, गायत्रीपुरश्चरण, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी आदिके द्वारा शक्तिकी आराधना, मृत्युंजय आदिके द्वारा भगवान् शंकरकी उपासना, वाल्मीकीय रामायण तथा रामचरितमानसके सम्पुटित पारायण, रामरक्षा-स्तोत्र, नारायणकवच, शिवकवच आदिके अनुष्ठान, बगलामुखीके अनुष्ठान, अखण्ड नामकीर्तन तथा सामूहिक प्रार्थनाके आयोजन सर्वत्र होने चाहिये।

हम अपने देशवासियोंका ध्यान नम्रतापूर्वक इधर खींचते हुए उनसे निवेदन करते हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्रमें तन-मन-धनसे यथाशक्ति सरकारकी सहायता करते हुए ही विशेषरूपसे भगवदाराधन और देवाराधनकी ओर ध्यान देकर इन अनुष्ठानोंका आयोजन उत्साहपूर्वक करें-करायें, भगवान्की कृपापर विश्वास रखें। जहाँ भगवान्का आश्रय होगा और पर्याप्त बल होगा, वहाँ विजय सुनिश्चित है।

जहाँ कृष्ण योगेश्वर प्रभु हों, जहाँ धनुर्धारी हों पार्थ। मेरे मतसे वहाँ सदा श्री, विजय, भूति ध्रुव नीति यथार्थ॥

विनीत—**सम्पादक**

CC-0. Digitized by eGangotri. Kamalakar Mishra Collection, Varanasi